चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र

6

सिखों के गुरु महात्मा नानक सङ्गीत के बड़े प्रेमी थे। उनका विश्वास था कि भगवान की आराधना के लिए मधुर सङ्गीत सर्वोत्तम साधन है। इसलिए नानक ने निश्चय किया कि भक्ति-पूर्ण सङ्गीत के द्वारा भगवान की आराधना करके वे मुक्ति प्राप्त करेंगे।

अपने धर्म सिद्धान्त के प्रचार के लिए नानक रोज नए-नए स्थलों का भ्रमण करने लगे। उस भ्रमण में उनको सङ्गीत सुनाने के लिए भाई मर्दान नाम के एक बड़े विद्वान बराबर उनके साथ रहते थे। मर्दान इतना सुन्दर भक्ति-पूर्ण गान करते थे कि सुनने वाले तन्मय हो जाते थे।

गुरु नानक ने जो नियम अपने धर्म-सिद्धान्त के लिए बनाए थे, उनके बाद होने वाले अन्य सिख गुरु गण उनका पालन बड़ी तत्परता से करते रहे। पाँचवें गुरु अर्जुन देव के समय में उनके पास शान्त और बलवन्त नामक दो सङ्गीत-विद्वान थे। वे दोनों भाई-भाई थे।

वे दोनों बहुत दिनों तक अपनी गान माधुरी से गुरु अर्जुन देव और दूसरे भक्तों को तन्मय बना कर सबों से समादर पाते रहे।

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर दोनों विद्वानों के मन में व्याह करने की इच्छा पैदा हुई। लेकिन व्याह करना क्या मामूली काम था ? एक रोज दोनों भाई गुरु अर्जुन देव के पास गए और अपनी इच्छा गुरुदेव से कह सुनाई। उन्होंने गुरु से धन की मदद माँगी।

"इससे बढ़ कर अच्छी बात मेरे लिए और क्या होगी ? जरूर मदद करूँगा! बोलो, कितनी रकम चाहिए ?" यह सुन कर वे दोनों बोले-"गुरुजी ! आज शाम को

भजन-भाव होने के बाद भक्त लोग जो कुछ भेंट चढ़ायेंगे, वही हमें मिल जाय।"

उन लोगों की इच्छा के अनुसार, उस शाम को भक्तों ने जो कुछ चढ़ाया, गुरुदेव ने वह सब उनको दे दिया। देखा तो उस दिन बहुत थोड़ी रकम चढ़ावे में मिली थी-"'मालूम होता है, गुरुदेव ने जान बूझ कर कोई चाल चल दी है। जिससे इतनी कम रकम चढ़ावे में आई है।" इस प्रकार सन्देह करते हुए दोनों भजन-समाज से उठ कर चले गए। दूसरे दिन निश्चित समय पर शान्त और बलवन्त भजन समाज में हाजिर नहीं हुए। अर्जुनदेव ने उन्हें खबर भेजी। "सासेमीरा राम राम !" उन दोनों ने कहा। इतना कह कर ही वे चुप नहीं रहे-"हमारे मधुर-गान के कारण ही गुरुदेव के भजन- समाज में इतने लोग आते हैं। हमारे कारण ही गुरुदेव की इतनी बड़ी ख्याति है। अभी ही नहीं, सिखों के गुरु नानक महाराज ने भी अपने सङ्गीत विद्वान भाई मर्दान के कारण ही इतना बड़ा यश हासिल किया था।" ऐसी डीङ्ग भी मारी।

यह सुन कर गुरुदेव को बड़ा ही खेद हुआ। वे फौरन खुद उनके घर जा पहुँचे। लेकिन उन दोनों ने गुरुदेव को भी वही जवाब दिया। अर्जुन देव ने जब देखा कि ये दोनों महात्मा नानक की अवहेलना करके बात कर रहे हैं, तो उन्हें क्रोध आ गया।

अर्जुन देव ने उन्हें शाप दिया- "देवाराधना के लिए काम में आने वाली यह सङ्गीत विद्या अब तुम्हारे किसी काम में न आएगी। गुरुदेव की वाणी की शक्ति के प्रभाव से उन की जीभ अपने वश में न रह गई। वे दोनों बड़े भारी कष्ट में पड़ गए। मुँह में आहार जाना भी मुश्किल हो गया।

वहाँ अर्जुन देव ने भजन-समाज में आए हुए सज्जनों से निवेदन किया- "निश्चल भक्ति से ईश्वर की प्रार्थना करो। जिसे जो बाजा मिले हाथ में ले लो और कीर्तन करो।" गुरुदेव का

आदेश सुनते ही वहाँ जो लोग जमा थे सब ने एक-एक बाजा हाथ में लिया और ऊँचे स्वर से भगवान का भजन करने लग गए। जिसे सङ्गीत का कुछ भी अभ्यास न था, वह भी अद्भुत ढङ्ग से बड़े अनुभवी गायक की तरह गाने लग गया और जिसने कभी कोई बाजा हाथ से छुआ भी नहीं था, वह भी बड़े कौशल के साथ बजाने लग गया।

कुछ समय के बाद शान्त और बलवन्त को अपनी गलती मालूम हो गई। सामने वे कौन-सा मुँह लेकर आते। इसलिए उन्होंने मित्रों के द्वारा खबर भेजी। इस पर गुरुदेव ने अत्यन्त उग्र हो कर कहा-"भगवान से प्राप्त हुए स्वर-माधुरी को भगवान के लिए ही गाए जाने वाले गीतों में जो नहीं प्रयोग करना चाहता, उसको कैसे क्षमादान दिया जाय ? इस के बारे में जो भी मुझ से बात करने आएगा, उसके मुँह पर कालिख पोत कर, गधे पर चढ़ा और कर, सारे शहर में मैं उसका जुलूस निकलवा दूँगा।"

गुरु देव के ऐसा कहते ही, कोई उनके पास जाने का साहस न कर सका। कोई उपाय न देख कर शान्त और बलवन्त लाहौर चले गए और लाधाजी नामक एक महानुभव की शरण में पहुँचे। लाधाजी उस प्रान्त के प्रख्यात परोपकारी पुरुष थे। परोपकार के लिए बड़े से बड़े त्याग करने को भी वे तैयार रहते थे। उन दोनों भाइयों ने अपनी सारी राम कहानी उन से कह सुनाई। लाघाजी को उन पर दया आ गई। "अच्छा! तुम लोग जाओ, में इस पर सोच-विचार करूँगा।" ऐसा कह कर उन्होने उन दोनों माइयों को विदा कर दिया। उनके जाते ही लाधाजी ने अपने मुँह में कालिख पोती और गधे पर सवार होकर जुलूस के साथ अर्जुन देव के रास चल पड़े। लाधाजी के अमृतसर पहुँचते-पहुँचते नगर में एक धूम सी मच गई।

पुरुष स्त्री बाल-बच्चे झुण्ड के झुण्ड जमा हो कर कोलाहल करने लग गए। "यह गड़बड़ी क्या है?" इस प्रकार पूछते हुए लोगों ने जब झुण्ड को उस देश में आते हुए देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

यह सुन कर गुरुजी को भी आश्चर्य हुआ। भाई लाधाजी की परोपकार-वृति की उन्होंने अत्यन्त सराहना की। फिर एक बड़ा दरबार करके गुरु अर्जुनदेव ने लाधाजी का आदर सत्कार किया। फिर शान्त और बलबन्त को भी माफी देकर लाभाजी को सन्तुष्ट कर दिया।

उस दिन से शान्त और बलवन्त ने सबक सीख लिया, और अपनी सङ्गीत प्रतिभा को देव-सङ्कीर्तन में उपयोग करके धन्य हो गए। उसी दिन से महानुभाव लाधाजी का नाम "लाधा परोपकारी" हो गया, और वे सार्थक नाम हो गए।

पुराने जमाने में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के एक सौ बेटे थे। सौ पुत्रों में से आखरी पुत्र का नाम सम्बर था। राजा ने एक-एक बेटे को एक-एक गुरु के पास विद्याभ्यास के लिए छोड़ दिया। सम्बर बोधिसत्व के पास पढ़ने गया। बोधिसत्व क्या मामूली गुरु थे ? वे महान ज्ञानी थे। राजकुमार को पुत्र के समान प्यार करते हुए बड़े जतन से पढ़ाने लगे। सम्बर को भी गुरु के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह गुरु का आदेश कभी टालता नहीं था।

कुछ समय के बाद गुरु-गण अपने-अपने शिष्यों के साथ राजा के पास आए और बोले "महाराज! आप के कुमार सभी विद्याओं में प्रवीण हो गए।" ऐसा कह कर उन्होंने राजकुमारों को राजा के हाथ में सौंप दिया। राजा ने उन गुरुओं को बहुत आदर-सत्कार दिया, और उन्हें बहुत तरह के भेंट-पुरस्कार दिए। राजा अपने पुत्रों की प्रज्ञा देख कर बहुत खुश हुआ और एक-एक राजकुमार को एक-एक राज्य दे दिया।

अन्तिम पुत्र सम्बर विद्याएँ पूरी करके गुरु के पास गया और प्रश्न करने लगा-"अगर पिताजी मुझे कोई राज्य देना चाहें, तो मैं क्या करूँ?" बोधिसत्व ने उसका जवाब दिया-"कुमार ! अगर पिता तुमको राज्य देना चाहें तो तुम उनसे इस प्रकार कहो-महाराज ! मैं सब से छोटा हूँ। अगर में राज्य करने लगूँ तो फिर आपकी देख-भाल कौन करेगा? इसलिए मुझे राज्य से कोई मतलब नहीं। आप के चरण-कमलों को सेवा करता रहूँग; यही मेरे लिए सब से बड़ी निधि होगी।"

एक दिन राजा बोधिसत्व के आश्रम में आया। सम्बर पिता को प्रणाम करके एक

ओर खड़ा हो गया। राजा ने पूछा-"राजकुमार! क्या तुम्हारा विद्याभ्यास पूरा हुआ ?" उसके जवाब में अत्यन्त नम्रता से सम्बर ने कहा-"पूरा हो गया पिताजी।" "तो अब तुम जो राज्य चाहो माँग लो।" राजा ने पूछा।

यह सुन कर सम्बर बोला-"पिताजी! मैं आपका सब से अन्तिम पुत्र हूँ; अगर में भी राज्य करने लगूँ तो आपकी देख-भाल करने को कौन रहेगा? इस लिए मुझे राज्य से कोई मतलब नहीं। मैं आपके पद-कमलो के सेवा करता रहूँ, बस मुझे एक मात्र यही चाहिए।"

पुत्र की बात से खुश होकर राजा ने कहा-"बहुत अच्छा !" तब से सम्बर हमेशा पिता के पास रहने और उनकी देख-भाल करने लगा। इसके साथ-साथ वह अपने गुरुदेव बोधिसत्व की सम्मति भी बराबर लेता रहा ।

एक दिन सम्बर ने फिर अपने गुरुदेव से पूछा-"गुरुदेव ! मुझे और क्या करना है ?"

गुरुदेव के कहने पर उनकी आज्ञा के अनुसार सम्बर ने अपने पिता से एक बञ्जर भूमि माँग ली। फिर उस बञ्जर भूमि को उसने एक सुन्दर उद्यान वन में बदल दिया; और नगर के बड़े-बड़े लोगों को उस उद्यान में निमन्त्रित किया। इस प्रकार सम्बर का परिचय लोगों से बढ़ा।

उसके बाद पिता की आज्ञा लेकर नगर के चारों वर्णों को निमन्त्रित करके भोजन-पान से उन्हें सन्तृप्त किया। फिर एक दिन विशेष रूप से राज्याश्रित परिवारों को निमन्त्रित किया और अनेक प्रकार के आदर-सत्कार के साथ उनकी अभ्यर्थना की। उसके बाद राज्य की सेना और घुड़ सवारों को भी उसने बहुत अच्छी तरह भोज दिया।

फिर गुरु की आज्ञानुसार सम्बर ने पिता से पूछ कर विदेशों से आए हुए राज दूतों और प्रधान-व्यापारियों के लिए खुद अपनी निगरानी में सुख-सम्पन्न भवनों में रहने की सुव्यवस्था कर दी। पिता के पास रहते हुए इस प्रकार के सुन्दर कामों के द्वारा सम्बर सबों के मुँह से साधुवाद प्राप्त करने लगा।

कुछ दिनों के बाद राजा के देहावसान का काल समीप आया। उस समय मन्त्री-गण राजा के पास पहुँचे और बोले-"महाराज! आप के अनन्तर छत्राधिकारी कौन होगा? आप का जो अभिप्राय हो, उसके अनुसार हम चलेंगे- आज्ञा मिले।" इस पर राजा बोला-"मन्त्री महाशय! मेरे सौ पुत्रों को छत्राधिपत्य का अधिकार है। उनमें से जिसको आप लोग पसन्द करें, उसे छत्राधिकारी बना दें।"

उसके बाद मन्त्रियों ने अपना समावेश किया और इस प्रश्न पर खूब वाद-विवाद हुआ। सब का मन सम्बर के ऊपर ही जा लगा। फिर अत्यन्त धूम-धाम के साथ सम्बर को राजगद्दी पर बिठा दिया गया।

गुरुदेव बोधिसत्व की सलाह से सम्बर न्यायानुसार राज-शासन

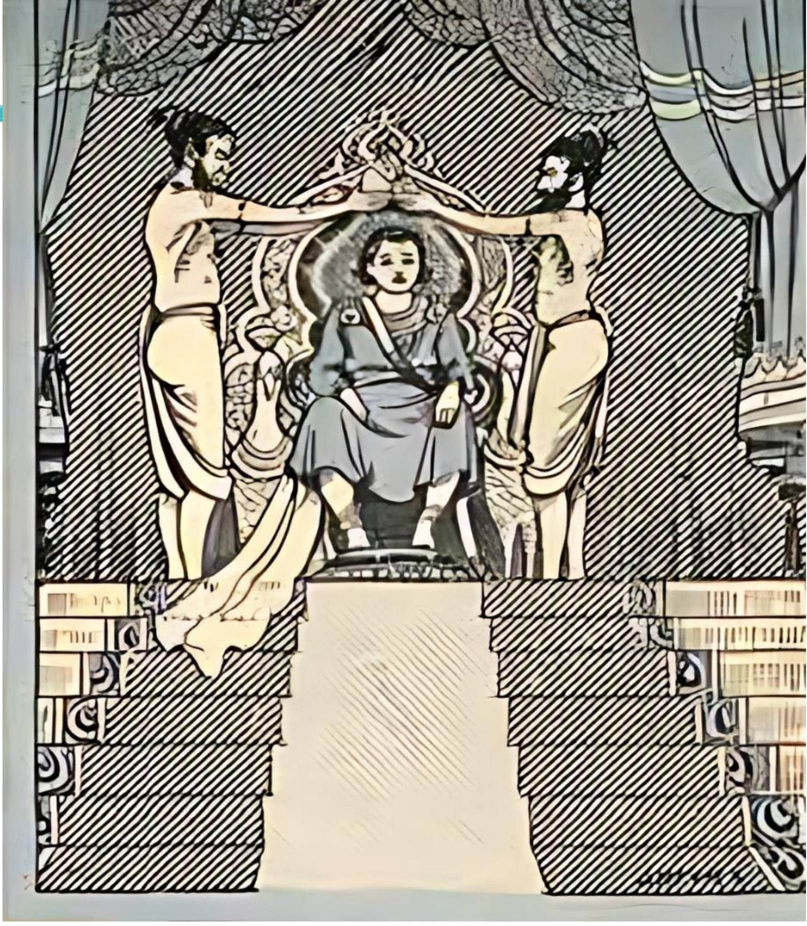

करने लगा। इस प्रकार होते-होते पिता के बाद सम्बर ही छत्राधिकारी हो गया। यह बात बाकी निनानवे पुत्रों को मालूम हुई-"जब कि हम सब बड़े भाई यहाँ बैठे हैं, तो यह दुधमुँहा बच्चा कैसे राजा हो सकेगा?"

बाकी सब भाई एक हो गए- "राज-गद्दी छोड़ो-या हम सबों से युद्ध करो।" इस प्रकार छोटे भाई के पास उन लोगों ने सन्देश भेजा। इतना ही नहीं सेना के साथ वे लोग राजधानी पर चढ़ आए और किले को घेर लिया। सम्बर ने यह समाचार गुरुदेव के पास भेज दिया। यह सब सुन कर बोधिसत्व

ने सम्मति लिख भेजी-"धर्मात्मा राजा! तुम अपने भाइयों से कभी विरोध मत बढ़ाओ। पिता की सम्पत्ति को सौ भागों में बाँट दो और उन्हें लिख दो कि अपना-अपना हिस्सा ले लीजिए। आप लोग मेरे सहोदर हैं-आप से मैं लड़ाई नहीं करूँगा।"

सम्बर ने वैसा ही किया। उसके बाद भाइयों में सब से बड़े भाई उपासत ने सब लोगों को जमा किया और कहा-"यह छोटा भाई सचमुच हम लोगों का जानी दुश्मन है। हमारे दुश्मनों से मिला हुआ है। लेकिन उसने हमें इसका अनुभव करने का अवकाश नहीं दिया। उसका सारा काम जन-सम्मत होता है। वह अपने सहोदर-भाइयों से झगड़ा करना नहीं चाहता। सब को बराबर-बराबर हिस्सा बाँट दिया है। ऐसे भले भाई के साथ हम कैसे पेश आएँ, उसमें क्या दोष निकालें ?"

"उसे छोड़ो। हम सब को छत्राधिपत्य का हक सचमुच ही प्राप्त है। लेकिन हम उसे एक साथ नहीं प्राप्त कर सकते हैं न। ऐसी हालत में मुझे यही उत्तम ऊँचता है कि हम लोगों में से इसी को छत्राधिकारी बनायें और अपनी सम्पत्ति राज्य को दे दें !" सब भाइयों को यह राय पसन्द पड़ी। उन सब लोगों ने सेना के साथ नगर में प्रवेश किया। मगर चढ़ाई करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि अपने भाई सम्बर का सम्मान करने के सङ्कल्प से।

सम्बर ने अपने भाइयों का बहुत उत्तम रीति से आदर-सत्कार किया। वे लोग अपने-अपने उचित स्थानों पर सुशोभित हुए। छत्राधिपति सम्बर भी गद्दी पर राज्य चिन्हों के साथ सुशोभित हुआ।

छोटे भाई सम्बर को देख कर उपासत ने इस प्रकार सोचा -"अपने बाद पिताजी

ने राज्य-सिंहासन का अधिकारी सम्बर को ही समझा होगा; इसीलिए उन्होंने हम लोगों को एक-एक अलग-अलग राज्य दे दिया और सम्बर को कुछ नहीं दिया।" इस प्रकार सोचने के बाद उपासत अपने छोटे भाई की ओर मुड़ा और आश्चर्य से प्रश्न किया-"धर्मात्मा राजा ! हम सबों में इतने अच्छे होने की शक्ति आपको कैसे प्राप्त हुई ? क्या किसी मन्त्र की साधना से या किसी देवी देवता के आशीर्वाद से ?" उसके जवाब में सम्बर बोला-"भाइयो! मुझे मन्त्र या देवी देवता कुछ नहीं मालूम। मैं सिर्फ गुरुजनों की, योगी-यतियों की, सेवा करना जानता हूँ। किसी के साथ ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता। नौकर-चाकरों को ठीक समय पर वेतन दे देता हूँ। हमारे राज्य में जो व्यापारी या राज-दूत आते हैं, उनका उचित सम्मान करता हूँ। इससे अच्छी चीज और क्या हो सकती है ?"

उसके बाद भाई के गुणों का गान करते हुए उपासत ने फिर इस तरह कहा-"भाई सम्बर, इसी प्रकार की धर्मपद्धति से तुम राज-शासन करते हुए कीर्ति कमाओ। हम सब तुम्हारे सहोदर भाई तुम्हें यही आशीर्वाद देते हैं। तुम्हें दुश्मनों का कोई डर नहीं; तुमको और तुम्हारी सम्पत्ति को हम सब हजार आँखों से देखेंगे। भू-लोक में तुम देवेन्द्र की पदवी प्राप्त करो।"

इस प्रकार सब भाई मिल कर काशी राज्य में कुछ दिन साथ रहे, फिर सब लोग छोटे भाई से उचित सम्मान पाकर और उसे आशीर्वाद देकर अपने-अपने राज्य को सन्ताप के साथ विदा हो गए।

कई सौ बरस पहले बीदर नाम के एक गाँव में एक मठ था। उस मठ में दादाशाह नाम का भक्त और हुसेन नाम का शिष्य एक छोटे गधे के बच्चे के साथ रहा करते थे।

वह दरगाह (मुसलमानों का मठ) मक्का जाने के रास्ते में पड़ती थी। हज को जाने बाले मुसाफिर उस दरगाह में जाते और भक्ति भावना से कुछ-न-कुछ चढ़ा आते थे। उसी चढ़ावे से उन दोनों गुरु-शिष्य का निर्वाह होता था। उस दरगाह में सजीव समाधि है; ऐसा माना जाता था और दादाशाह अपने गुरु के बारे में महिमामयी बातों का गान किया करते थे।

कुछ समय बीतने के बाद हुसेन के मन में एक इच्छा पैदा हुई। गुरु जी के पास जाकर उसने कहा-"इतने मुसलमान भाई मक्का जाते हैं और पुण्य प्राप्त करके लौटते हैं। आज्ञा हो तो मैं भी हज कर आऊँ।"

"बहुत अच्छा! तुमने मेरी बहुत अच्छी सेवा-टहल की है। इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। फकीर होने के कारण तुम को देने लायक मेरे पास और कुछ नहीं है। लेकिन मैं तुमको एक भेंट देता हूँ। तुम इस गधे के बच्चे को गुरु का आशीर्वाद मान कर श्रद्धा और प्रेम के साथ ले जाओ।"

"बहुत अच्छा!" कह कर हुसेन ने एक शुभ साइत देखी और कुछ रोटी बगैरह की गठरी बाँधी। फिर गधे के बच्चे को साथ लेकर वह मक्के के लिए चल पड़ा। कुछ दिनों तक चलने के बाद एक बहुत बड़ा रेगिस्तान सामने आ खड़ा हुआ। उसे पार करके जाना था। गधे के बच्चे को कभी चलने की आदत नहीं थी। चलते-चलते वह बेहाल हो गया।

लेकिन यह गुरु का दिया हुआ प्रसाद था। इसको वह कैसे छोड़े? ऐसा सोच कर हुमेन ने उसे कन्धे पर उठा लिया और दो-तीन मञ्जिल पार कर गया। लेकिन उस गधे के बच्चे को चारा-पानी तो ठीक से मिलता नहीं था और मैदान में लू लगती रहती थी। इन सब तकलीफों को सह न सकने के कारण वह सूखता गया और एक दिन उसकी साँस बन्द हो गई।

गधे का बच्चा मरे या जिए, वह तो हुसेन के गुरु का प्रसाद था। इसलिए लाश को ही लेकर वह चलता रहा; और चलते-चलते एक खजूर के पेड़ के पास पहुँचा। मुर्दे से अब बदबू आएगी; इसे ढोने से कोई फायदा नहीं। यह सोचकर उसने एक गहरा गड्ढा खोदा और उस में खजूर के पत्ते फैलाए, फिर गधे के बच्चे को डाल कर उसे पत्तों से ढक दिया। फिर उसके ऊपर से बालू डाल कर छिपा दिया।

इतने में उस देश के सुलतान के कुछ सिपाही वहाँ आए और पूछ-ताछ करने लगे। सिपाहियों को देख कर वह थर-थर काँपने लगा और बोला-"भाइयों, यह मेरे गुरु दादशाह की सजीव समाधि है। एक घण्टे के पहले ही वे समाधि में बैठ गए हैं।" उन लोगों ने भक्ति-भाव से उस समाधि को नमस्कार किया और अपनी राह ली।

अब हुसेन को वहीं पर रह जाने में अच्छा मालूम हुआ। कहीं से दो-चार बाँस ले आया और एक छोटी-सी झोरड़ी खड़ी कर ली। फिर यात्रियों की नजर पड़ने लायक जगह में एक पत्थर पर उसने यह लिखा-"सजीव समधि में बैठे दादाशाह की दरगाह !" इस प्रकार की सख्ती डाल कर वह भक्ति गान करता हुआ वहीं बैठ गया। कुछ दिन के बाद उसके पास अच्छी सम्पत्ति जमा हो गई,

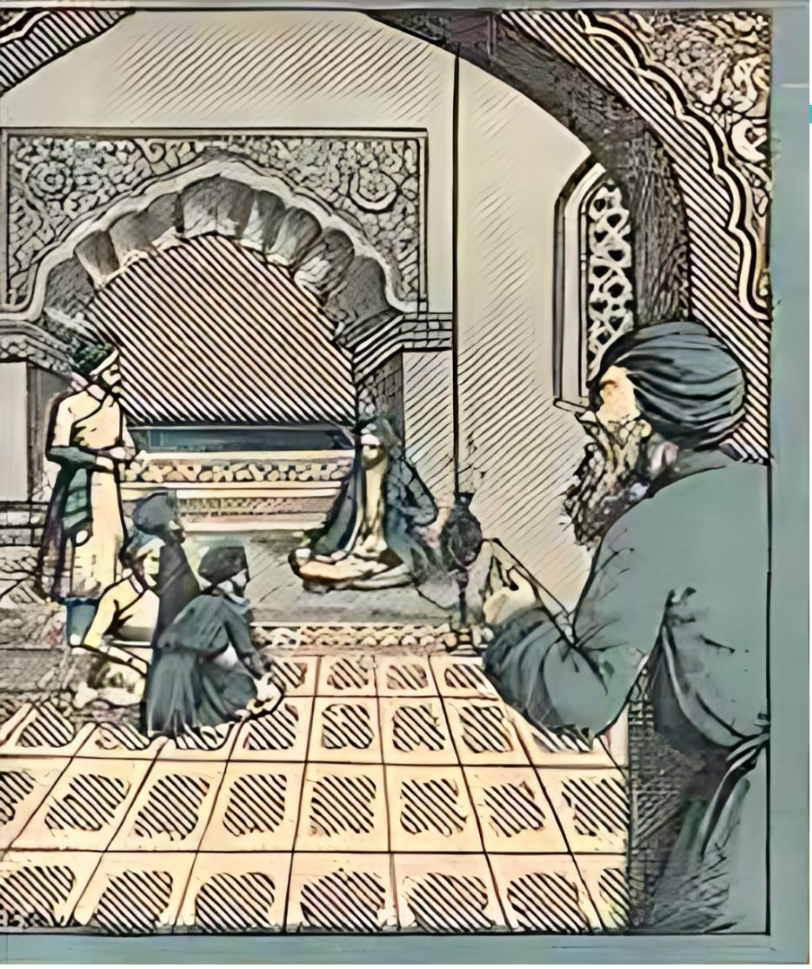

और उस रेगिस्तान में उसने एक अच्छी इमारत खड़ी कर ली। इस प्रकार दादाशाह की कीर्ति बहुत दूर-दूर तक फैल गई।

होते होते दूर बीदर में रहने वाले दादाशाह के कानों तक वह कीर्ति पहुँची। दादाशाह को आश्चर्य हुआ कि यह दूसरे महाशय कौन हैं? उन्हें देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। कुछ दिनों के बाद दादाशाह उस महल के पास पहुँचे। उन घोड़ों, ऊँटों और उस भवन को देख कर वे दङ्ग रह गए।

अन्दर जाकर मखमली तोशक तकिए पर नवाब की तरह बैठे और हुक्का पीते हुए, अपने शिष्य महाशय हुसेन को देख कर दादाशाह के अचरज का ठिकाना न रहा। उन्हें देखते ही हुसेन उठा और गुरु को पहचान कर अपने चेले-चोटियों को बाहर जाने को कहा। और खुद जाकर उनके चरणों पर पड़ गया। "यह सब क्या है भाई ?" दादाशाह ने बड़ी आतुरता से पूछा।

"क्या बताऊँ उस्ताद जी ! यह सब आप की दया का फल है। आपने जो गधे का बच्चा मुझे भेंट किया था, वह मर गया। मैंने उसको यहीं दफना दिया। सहसा सुलतान के सिपाही आ धमके। मैंने यह सब कभी देखा-सुना नहीं था इसलिए उनको देखते ही अनायास मेरे मुँह से आपका नाम निकल गया। आपके नाम से ही इतने दिनों से यह दरगाह चलती आ रही है। अब अगर आप इसका रहस्य खोल देंगें, तो हम दोनों पर आफत टूट पड़ेगी। यह सुन कर दादाशाह ने कहा-"बेटा! मैने कहा था न कि यह गधा है तो क्या हुआ ? कभी न कभी तुम्हारे काम जरूर आएगा। वहाँ मैं जिसकी पूजा कर रहा हूँ, उसे तुम क्या समझते हो ? वह भी इसकी माँ ही है।" यह रहस्य आज मालूम करके हुसेन को काठ मार गया।

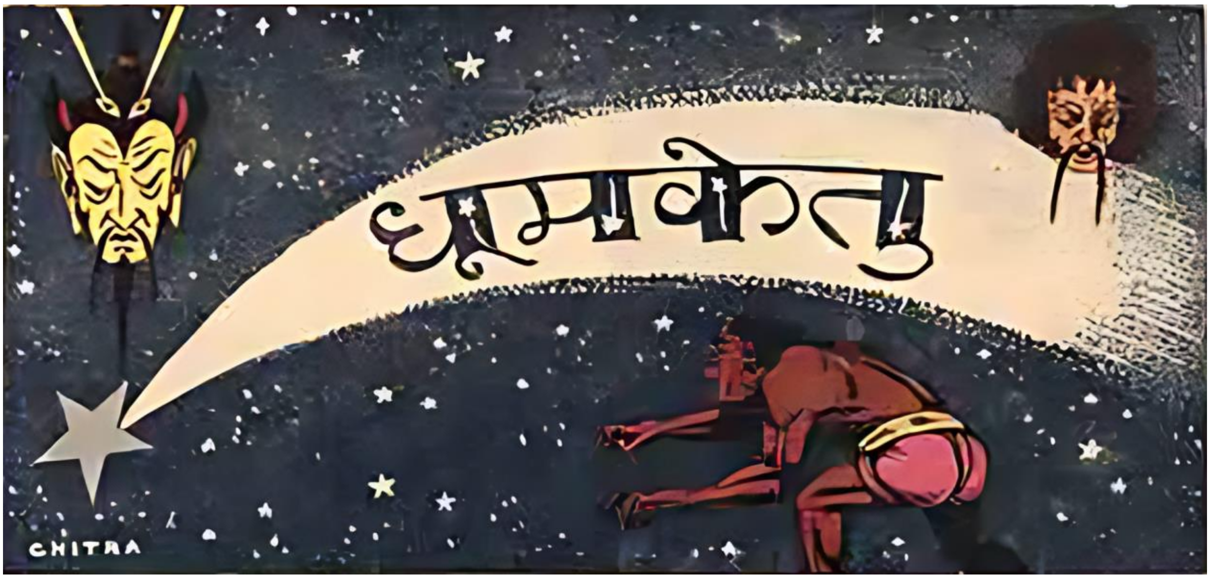

समरसेन और उसके सैनिक पेड़ों की डालियों में छिप कर उन विचित्र जानवरों की भयङ्कर लड़ाई देख रहे थे। हाथी सिंहों से कैसे पिण्ड छुड़ावे? इसके लिए वह आतुर हो रहा था।

उसी समय सामने आकर एक सैनिक ने समरसेन से पूछा- "सेनापति ! अब तो हम लोग अत्यन्त कठिन जाल में पड़ गए। रोमाञ्चित करने वाले इस द्वीप से हम कौन सी धनराशि लूट ले जाने वाले हैं? एक दूसरा सैनिक सामने आ खड़ा हुआ और बोला-"अगर हम यहाँ से जीता बच कर चले जाएँ तो यही गनीमत समझो।"

समरसेन यह सुन कर चिन्ता में पड़ गया-"समस्त संसार के मानव प्राणी सुसभ्य होकर आज कैसा सुखमय जीवन बिता रहे हैं। लेकिन इस द्वीप के निवासी अब तक पाषाण युग की असभ्य दशा में ही पड़े हैं। यहाँ न कोई राजा है, और न कोई शासन- व्यवस्था। ऐसी हालत में यहाँ कौन सा

धन मिल सकता है ?" इस पर वह तेजी से विचार करने लगे।

समरसेन जब इस तरह सोच-विचार कर रहा था, उसी समय समस्त जङ्गल को प्रतिध्वनित करके एक आवाज आई-"ओ ! काल- भुजङ्ग! अरे कालो ! आओ, आओ ! उस चार आँखों वाले प्राणी को खोजो और मार डालो।" इस प्रलय मचाने वाले नाद से दसों दिशाएँ गूँजने लग गई।

यह सुन कर समरसेन के कलेजे की धुकधुकी बन्द होती जान पड़ी। वह थर थर काँपने लग गया। उस डरावनी आवाज को सुनते ही झील के पास के जानवर और पेड़ों के नरवानर सब तितर-बितर हो गए। इतने में उसी झील के किनारे ताड़ के पेड़ के बराबर एक लम्बा आदमी खड़ा था। वह एक आँख से ही देख रहा था। उसके दोनों पैरों को कस कर लपेटे पिण्डली मारे एक काल सर्प आगे सिर निकालने की कोशिश कर रहा था। पीछे की ओर उसके सिर को और भी ऊँचे पर झुलाते हुए आदमी की एक खोपड़ी खड़ी थी। बह ताड़ जैसा लम्बा और एक आँख वाला आदमी, झील के किनारे खड़ा होकर चारों

ओर देखता सिर हिलाता हुकार कर उठा-"ओ! मन्त्रों के द्वीप मदार का टीला ! गोखरू का पहाड़ ! पहाड़ से काटी चट्टान! उस चट्टान पर खड़े होकर देखने से तुम्हें क्या दीख पड़ेगा- अरे कङ्काल।"

उसके जवाब में वह आदमी की खोपड़ी अट्टहास करके कहने लगी- "ठीक बीच समुद्र में नाच रही है एक नौका। नौका में धन राशि हैं। नाव के बाहर एक नाग-कन्या रखवाली कर रही है। नाग को मार डालो। बस; यह समस्त धन राशि हमारी।"

"हाँ! यह कर सकें तो वह धन हमारा। लेकिन.... यह चार आँखों वाला.... ओह!" ऐसा कह कर गरज उठा, वह एक आँख वाला। पेड़ पर बैठे हुए समरसेन ने यह बात चीत सुनी, तो भय और आश्चर्य के भाव बारी-बारी से आने-जाने लगे। अब उसे मालूम होने लगा कि वह मन्त्रों बाला द्वीप है। उस द्वीप में किसी पहाड़ से काटी चट्टान के ऊपर खड़े होकर देखा जाय, तो समुद्र में धन-राशि से भरी हुई एक नौका दीख पड़गी।

मगर वह चार नेत्रों वाला कौन ? भयङ्कर आकार वाला कौन था ?

उस एक आँख वाले मन्त्रवेदि और उसके बीच दुश्मनी क्यों हुई? क्या यह दुश्मनी सिर्फ उस नाव की धन-राशि के कारण ही था किसी और कारण से ?

समरसेन जब इस प्रकार सोच रहा था वह भयङ्कर आकार वाला मन्त्रवेदि झील से बाहर निकला और जङ्गल में चला गया। उसके पीछे वह काल सर्प और उसके पीछे मनुष्य की खोपड़ी भी चली गई।

थर-थर काँपते हुए सैनिकों की साँस उस एक आँख वाले व्यक्ति के जाते ही कुछ नीचे उतरी और सब लोगों ने समरसेन की और दृष्टि उठाई।

सैनिकों में से एक घबरा कर बोला-"यह एक आँख वाला बहुत बड़ा मान्त्रिक मालूम होता है। उसके पीछे जाने वाला वह काल सर्प और वह खोपड़ी बड़े बड़े धैर्यशालियों के कलेजों को भी दहला सकते हैं।" इसका समरसेन क्या जवाब देता है, यह सुनने के लिए सैनिक लोग उत्सुकता से देखने लगे। समरसेन कुछ देर रुक कर बोला-"इस भयङ्कर द्वीप में भी हमें धन मिलने की आशा दीख रही है। इसके लिए हम में कष्ट सहन की शक्ति चाहिए।

ऐसा कहते हुए समरसेन पेड़ से नीचे उत्तर भाया। सैनिक भी उतरे। अब आगे क्या होगा; इस सवाल पर सैनिकों में हो हल्ला होने लगा। कोई भी बात हो, फैसला तो समरसेन को ही करना था।

"तुम लोगों ने सुनतो लिया...गोखरू का पहाड़, पहाड़ से काटी हुई चट्टान..... उस एक आँख वाले मान्त्रिक ने यही कहा था न? वह पहाड़ और पहाड़ से काटी हुई वह चट्टान कहाँ है; इसका पता लग जाय तो हमारे आने का उद्देश पूरा हो जाय।"

समरसेन की बात सुनकर एक सैनिक ने सन्देह से पूछा-"क्या आप को उस काने मान्त्रिक की बात पर विश्वास होता है ?"

समरसेन ने इसका तुरन्त जवाब दिया-"उस मान्त्रिक ने जो प्रश्न किए थे और मनुष्य की खोपड़ी ने जो उसका जबाब दिया था, इस में झूठ कुछ भी नहीं था। इसके अलावा धन से भरी हुई एक नाव और उसकी रखवाली के लिए नियुक्त एक नागकन्या; यह बात भी हम को मालम होती है। यही नहीं 'चार आँखों वाले', एक और ऐसे व्यक्ति का भी पता चलता है, जो मान्त्रिक का जानी दुश्मन है। लेकिन हमारी अभी की समस्या तो यह है कि सब

विघ्न-बाधाओं को पार करके अगर हम वहाँ पहुँच भी जायें, तो उस धन-राशि से भरी नाव पर कैसे अधिकार करें ?"

इस समस्या का समाधान करने का साहस कोई सैनिक नहीं कर सका। खाना होने के पहले ही दक्षिण दिशा में पुछल्ला तारा दीख पड़ा था और उससे एक भारी अपशकुन का डर सैनिकों के दिल में बैठ गया था। अब समरसेन की बातों से उनका कलेजा और भी दहलने लग गया।

जिस जगह वे लोग खड़े थे; वहाँ दृष्टि दौड़ा कर समरसेन ने चारों ओर देखा। फिर होशियारी और सावधानी से वे आगे बढ़े। इस प्रकार पेड़ों को पार करके जैसे ही वे लोग कुछ दूर गए, कलेजे को चूर करने वाली एक चीख उनके कानों में पड़ी। यह क्या बला है; लोग सोच ही रहे थे, कि एक प्रचण्ड काला-कलूटा उल्लू उनके सिर पर से उड़ता चला गया। आश्चर्य की बात तो यह हुई कि वह उल्लू मानव की भाषा में कठोरता से चिल्ला उठा-

"चार आँखों वाला ! चार आँखों वाला! नर मानव नराधम। नर मानव- नराधम। बहूपाक।" कहता वह उड़ता रहा।

उस डरावनी सूरत वाले उल्लू को, और मनुष्य की भाषा में उसकी चीख पुकार को सुन कर वे लोग निश्चेष्ट हो गए।

"जो मान्त्रिक चिड़ियों के मुँह से मनुष्य की भाषा निकलवा सकता है, वह और क्या नहीं कर सकता ?" सब के मन में यही बात चक्कर काटने लगी।

निश्चेष्ट बने हुए समरसेन और उसके सैनिकों में दिग्भ्रम पैदा करने वाला एक और आश्चर्यमय दृश्य सामने आ खड़ा हुआ। वह या आधा हिस्सा मनुष्य का और आधा बानर का; आकार एक नरवानर। वह धम से पेड़ पर से कूद पड़ा। जो काला उल्लू चीखता-पुकारता आकाश में उड़ रहा था, वह उस नर-वानर के कन्धे पर आकर बैठ गया और उसके कानों में कुछ कुछ कहने लगा।

वह नरवानर एक बार पीछे की ओर मुड़ा। समरसेन तथा उसके सैनिकों पर उसकी नजर पड़ी। फिर पेड़ों पर लटकती हुई लताओं के सहारे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदता वह एक क्षण में गायब हो गया।

"सेनापति ! पीछे हट जाने में ही अब हम लोगों की भलाई है। इस मन्त्र-द्वीप में हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। जो मान्त्रिक पक्षी और जानवरों को दूत-भूत की तरह काम में ला सकता है, उसकी शक्ति के सामने हमारे तीर-तलवार क्या काम आ सकते हैं?" ऐसा कर कर एक सिपाही समरसेन के आगे हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाने लगा।

समरसेन सुन कर भी अनसुना कर गया। सामने पेड़ पर बैठा हुआ वह उल्लू अपनी अङ्गारों के समान आँखों को इधर-उधर घुमाता सब कुछ देख भाल रहा था। हालत ऐसी दीख रही थी जैसे सहसा कोई आफत आ पड़ने वाली है।

यह देख कर समरसेन ने अपने पास के सैनिक के हाथ से धनुष ले लिया और बाण चढ़ा कर मुकाबले के लिए तैयार हो गया। फौरन एक सिगही बोल उठा-"सेनापति, उस मन्त्र शक्ति वाले पक्षी पर हमारे बाण कोई काम न कर सकेंगे; उल्टे हम व्यर्थ ही मान्त्रिक के क्रोध के पात्र बन जाएँगे। इसलिए अच्छी तरह सोच लेना जरूरी है।" समरसेन ने मुसकुराते हुए कहा-"उसका फैसला अभी हुआ जाता है। इसकी परीक्षा भी हो जाय कि हमारे बाणों में कितनी ताकत है।"

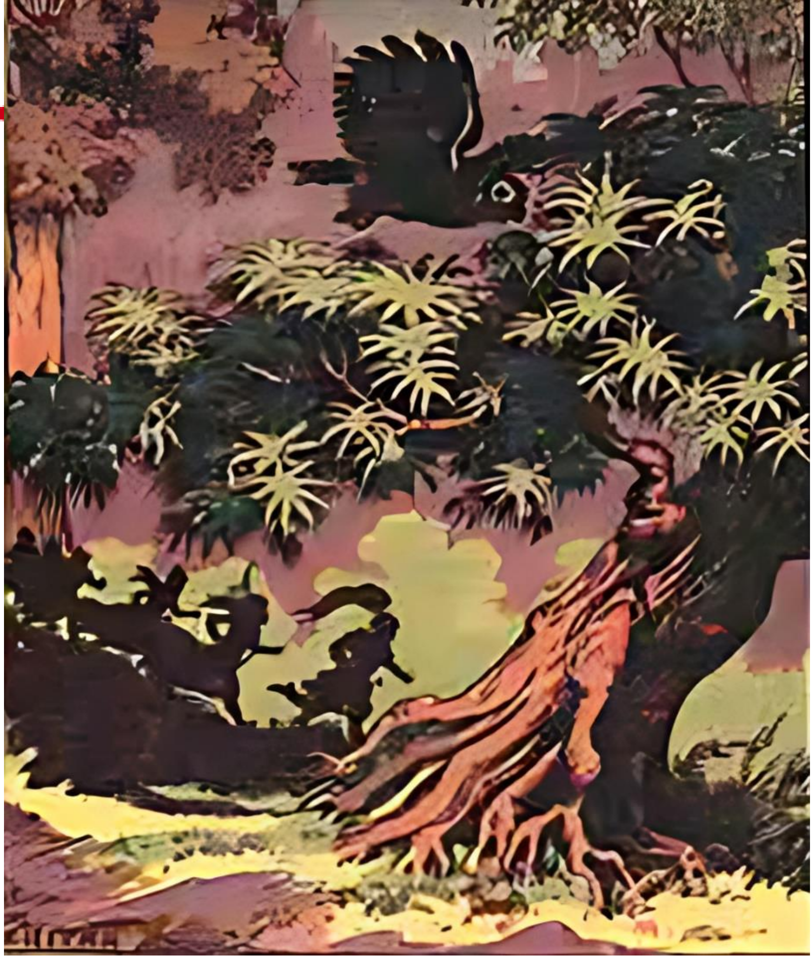

ऐसा कहते हुए समरसेन ने पेड़ पर बैठे उल्लू पर निशाना साधा और बाण छोड़ दिया। सनसनाता हुआ बाण जाकर सीधे उस उल्लू को लगा। समरसेन सोच रहा था कि बाण लगते ही वह के-के करके गिरेगा और जमीन पर लोटने लग जायगा। लेकिन उसकी यह आशा पूरी नही हुई।

पंख में चुभे हुए उस बाण को उसने चोञ्च से पकड़ा और यों ही खींच कर दूर फेंक दिया। फिर वह कठोरता से बोला-"ऐ, नराधम ! तू मुझे मारने चला है ? उस एक दुर्धर मान्त्रिक को जो अपने गर्ब में फूला न समाता था; और उस एक आँख वाले के लिए ही जब में दुर्लभ हो गया हूँ, तब सुप और तुम्हारे बाणों की क्या बिसात? जरा ठहरो, वह शुभ समय नजदीक आ रहा है, जब वह चार आँख वाला तुम्हारा रक्त चूस लेगा।" ऐसा कहते-कहते वह अत्यन्त उग्र हो गया।

अब इन बातों से समरसेन को, पता चल गया कि वे लोग कितनी भयङ्कर आफत में फँस गए हैं। फोरन उसने सैनिकों को पुकारा और सब को साथ लेकर भागने लगा। लेकिन सिर पर उड़ते हुए वह डरावना काला उल्लू उसका पीछा कर रहा था। किसी

तरह भाग कर सब लोग समुद्र-तट पर पहुँच जाएँ और नाव पर चढ़ कर दूर निकल जायें, समरसेन का यही अभिप्राय था। लेकिन वह रास्ता भूल कर घोर जङ्गल में भटकने लग गया।

काफी देर तक रास्ता ढूँढते और भटकते फिरने के बाद भी उनको यह नहीं मालूम हुआ कि वे रास्ता मूल गए हैं। कहीं एक जगह बैठ कर स्थिर मन से आगे-पीछे देखने का अवकाश ही नहीं था। क्योंकि वह उह उन सबों का पीछा कर रहा था।

जब उसे कुछ नहीं सूझ पड़ा, तब समरसेन एक पेड़ से सट कर खड़ा हो गया। सैनिक भी चारों ओर से उसे घेर कर खड़े हो गए।

"एक तो हम रास्ता भूल गए, और दूसरे इस द्वीप के अधिकारी मान्त्रिक के विरोधी भी बन गए। अब हमारे लिए एक ही काम करना बाकी रह गया; कुण्डलनी देवी की प्रार्थना।" समरसेन ने कहा।

"पहले उस उल्लू से तो पिण्ड छूटे; उसकी नजरों से बच कर अगर हम निकल गए, तभी हमारी रक्षा हो सकेगी।" एक सैनिक ने कहा।

ठीक उसी समय वह जङ्गल फिर से प्रतिध्वनित हो उठा और किसी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। वह एक आँख वाला मान्त्रिक ही था।

"ऐ काल-भुजङ्ग! ऐ कङ्काल नेत्र!...." इस पुकार को सुनते ही चार आँख वाले का दूत-वह काला उल्लू पेड़ पर से चीखता-चिल्लाता उड़ गया।

"यह उल्लू की बला तो टली! उसके पञ्जे से तो हम छूटे।" ऐसा सोच कर जब समरसेन और उसके सैनिक खुश हो रहे थे, कि दूसरी ओर से फिर उस एक आँख वाले का भयङ्कर शब्द सुनाई पड़ा। बस, क्षण मात्र का विलम्ब न कर फौरन उन घने पेड़ों के बीच वे लोग तन-मन की सारी ताकत पैरों में लगा कर भागने लग गए। [अभी और है]

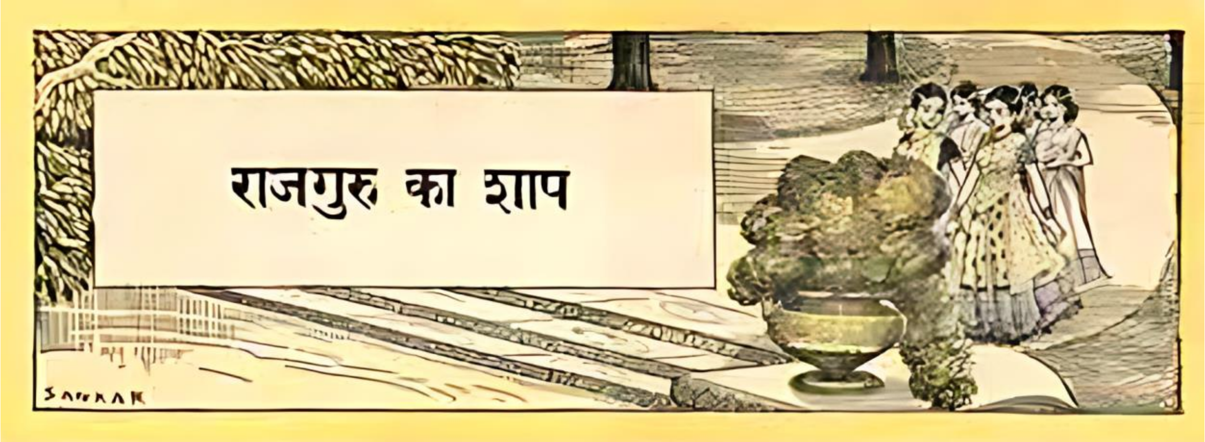

श्रीपुर राज्य के राजा का नाम था प्रदीप। प्रदीप के दरबार में राजा की अपेक्षा राज-गुरु का प्रभाव ही अधिक था। राज-गुरु की बात को राजा प्रदीप कभी नहीं काटता था। बात यह थी कि राजगुरु मामूली पण्डित पुरोहितों की तरह नहीं था। वह बहुत बड़ा तपस्वी व्यक्ति था। सञ्जीवनी-शक्ति उसे सिद्ध थी। ऐसी महिमा होने के कारण ही राजा प्रदीप राजगुरु के अधीन हो गया था।

प्रदीप की एक ही कन्या थी-सुधा। राज-गुरु की भी एक ही पुत्री थी-श्यामा। दोनों कन्याएँ एक उमर की थीं। दोनों एक साथ स्वाती थीं और एक ही पलङ्ग पर सोती थीं। इस प्रकार दोनों सखियों में दाँत फाटी रोटी का सम्बन्ध हो गया था। इसलिए दोनों कभी एक दूसरे को छोड़ कर रह नहीं सकती थीं। एक रोज दोनों सखियाँ उद्यान वन के सरोवर में जल- क्रीड़ा करने गई। सरोवर में उतरने के थोड़ी देर बाद, सहसा हवा का एक बड़ा झोंका आया और उनके कपड़ों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त कर गया। हवा लगने के कारण उन लोगों ने शीघ्र ही जल क्रीड़ा समाप्त कर दी और किनारे पर आ गई। राजकुमारी पहले आई थी, और उसने जल्दी में, इशमा की साड़ी पहन ली। यह देख कर इमामा ने कहा-"बहन ! तुम ने मेरी साड़ी पहन ली है।" यह सुन कर राजकुमारी को गुस्सा आ गया और चिढ़ कर बोली-"ये मेरी तेरी क्या बोल रही हो ? सब चीज तो मेरी ही है।" इस प्रकार वह अधिकार-गर्व से बोल उठी। उसकी यह बात सुन कर श्यामा को भी गुम्सा आ गया और उसने भी वैसा ही जवाब दे दिया।

अमरनाथ

श्यामा की बात से राजकुमारी का पारा और भी चढ़ गया-"हमारे धन पर जी रही हो और हमी से जबान लड़ाती हो ? आँखें सिर पर चढ़ गई हैं क्या ?" ऐसा कह कर सुधा ने श्यामा को खूब मारा और बगल के खण्डहर बने कुएँ में उसे ढकेल दिया। फिर तमतमाती हुई घर चली गई। इतना गोलमाल हो गया, लेकिन राजा को या राज्य मैं किसी को भी इसका पता न चला। बेचारी, श्यामा उस डरावने कुएँ में पड़ी हुई थी। ऐसे ही समय कोसल का राजा वहाँ शिकार खेलने आया। उस पुराने कुएँ में अन्दर से जाती हुई किसी की आवाज को सुन कर वह वहाँ पहुँचा, और झाँक कर देखने लगा। फिर तुरन्त उसे बाहर निकाला। जब उसे मालूम हुआ कि यह अमुक गुरु की पुत्री है तो उसे बड़ा खेद हुआ।

श्यामा ने उस राजा से अपनी सारी कहानी कह सुनाई और उससे प्रार्थना की कि वह उसको अपनी रानी बना ले। श्यामा ने उस राजा को आकृष्ट अवश्य किया था। लेकिन उसकी इच्छा पूरी करने का साहस उसे नहीं हुआ।

इधर सञ्जीवनी-शक्ति-सिद्ध राज-गुरु की पुत्री थी वह। इसलिए उसकी बात का कोई जवाब न देकर वह चुपचाप चला गया।

परिस्थितियाँ ऐसी प्रतिकूल हो गई; यह देख कर श्यामा अत्यन्त निराश हो गई और एक पेड़ के नीचे बैठ कर रोने लगी।

इतने में उधर--

बेटी को न देख कर राज-गुरु घबराए हुए राजा के पास पहुँचे। राजा को यह सब अगम्य-गोचर लगा। उसने फौरन राज-दूतों को हुक्म दिया कि राजगुरु की पुत्री को जहाँ से हो ढूँढ कर ले आओ। राजा के सिपाहियों ने श्यामा को ढूँढना शुरू

किया और बहुत खोज-ढूँढ के बाद श्यामा मिली। लेकिन कितनी भी प्रार्थना करने पर वह घर आने को राजी न हुई।

यह सुन कर राज गुरु उग्र हो गए। राजा भी घबरा गया। फिर दोनों कुछ सिपाहियों के साथ उस पेड़ के पास पहुँचे। श्यामा ने अपनी सारी बातें रो-रो कर कह सुनाई। राजा के दुःख का ठिकाना न रहा। गुरु के चरणों में पड़ कर उसने प्रार्थना की- "यह मेरी गलती है। मुझ पर दया करके मेरी बच्ची को क्षमा कीजिए। मैं आप का दासानुदास हूँ।" यह देख कर राज-गुरु ने अपनी बेटी से पर चलने के लिए कहा। लेकिन उसने दो शर्तें रखीं। पहली शर्त यह थी कि वह कोसल राजा की रानी बनाई जाय। दूसरी यह कि राजकुमारी सुधा उसके साथ सहेली की तरह जाय।" राज-गुरु ने राजा की ओर देखा। राजा ने पहले ही वचन दे दिया था कि जो काम उस से हो सकेगा वह जरूर करेगा। अब वह कैसे मुकरता ? श्यामा ने जैसा

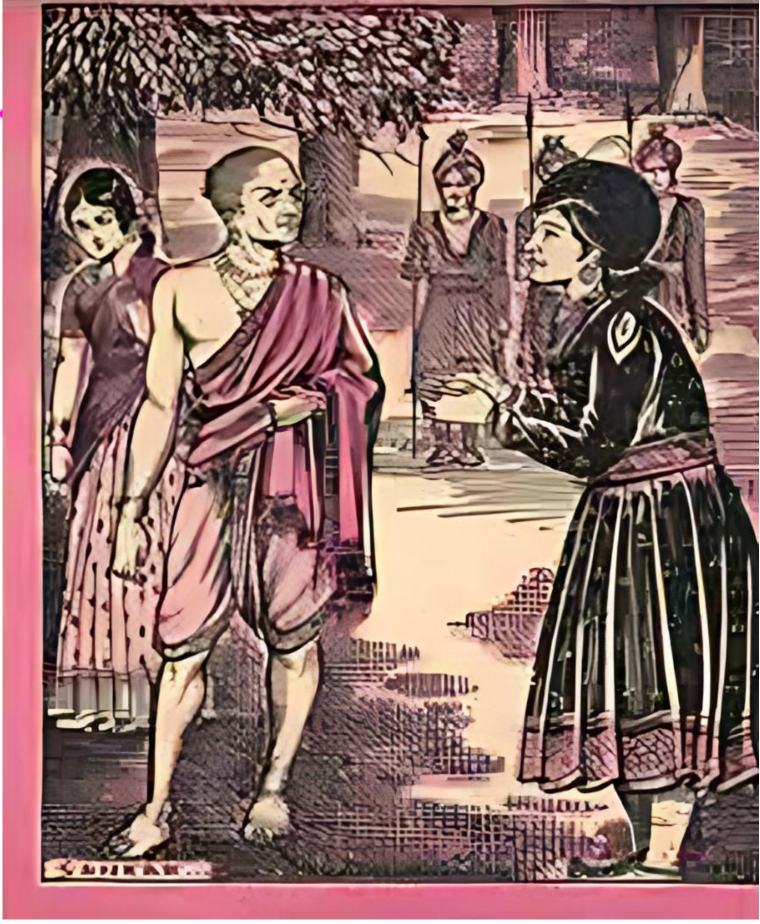

चाहा वैसा ही हुआ। कोसल राजा के साथ उसकी शादी हो गई और उसके साथ गई राजकुमारी सुधा उसकी सहेली बन कर। अब श्यामा के वश में थी सुधा, और उसकी इच्छा के अनुसार उसे सारा काम करना पड़ता था। सुधा की जिन्दगी यों अपमान में बीतने लगी। कुछ दिनों के बाद श्यामा के पुत्र पैदा हुआ। पुत्र पैदा होने के बाद से श्यामा सुधा को और सताने लगी। यह देख कर राजा को सहन न हुआ। उसने सुधा को इस सङ्कट से मुक्त करने का सङ्कल्प किया। इस सङ्कल्प से कोसल-राज सुधा को

साथ लेकर दूर प्रदेश चला गया; फिर उसने उसके साथ शादी कर ली।

चाहे जैसे किया गया हो, श्यामा को सब कुछ मालूम हो गया। वह बाप के पास जाकर धूम मचाने लगी। राज-गुरु क्रुद्ध हो गए, और उन्होंने राजा को शाप दे दिया-"राजा वृद्ध हो जाय।" शाप देते ही कोसल-राजा बूढ़ा हो गया।

यह सब देख कर राजा का मामू राज-गुरु के पास गया और सब बातें साफ साफ कह कर दया करने की याचना की। राजगुरु ने थोड़ी देर सोचा-"शाप लौटाया नहीं जा सकता। लेकिन अगर कोई अपनी इच्छा से उसका बुढ़ापा माँग ले तो वह चला जायगा।" राज-गुरु ने स्पष्ट कह दिया।

कोई भी चाह कर बुढ़ापा नहीं ले सकता है; इसी विश्वास से राज गुरु ने ऐसा कहा था। सब कुछ ठीक था। राजगुरु ने जैसा सोचा था वसा ही हुआ। कोई भी बुढ़ापा लेने को तैयार नहीं हुआ। राजा बहुत चिन्ता में था कि उसका पुत्र किसी को कुछ जताए बगैर अपने लिए बुढ़ापा माँग बैठा।

सहसा राजा का चेहरा बदल गया और वह आश्चर्य में पड़ गया। वह इस उधेड़-बुन में ही था कि बूढ़ा बना उसका बच्चा उसके सामने आ खड़ा हुआ। यह देखते ही बाप की व्याकुलता असीम हो उठी।

यह सब कुछ राज गुरु को मालूम हो गया। अपने नाती को इस रूप में देख कर कौन नाना इसे बर्दाश्त कर सकता है ? नाती के इस त्याग से प्रसन्न होकर उसने फौरन अपना शाप वापस ले लिया। उस दिन से सुधा और श्यामा में राग-द्वेष दूर हो गया और दूध में चीनी को तरह दोनों एक होकर रहने लगी।

कौडीमल नामक एक बड़ा व्यापारी था। शहर में दूकान के अलावा एक महल भी उसके पास था। उस महल में बिजली की रोशनी और पंखे का भी प्रबन्ध था। दुकान बन्द कर रात को जब वह घर लौटता, तो रोज के रोज अपना हिसाब देख लेता। पैसे सब गिन कर, नोट के नोट अलग रखना और जमा खर्च देख लेना उसका नियमित कर्त्तव्य था। एक दिन रात के दस बजे जब वह उसी प्रकार हिसाब देख रहा था, उसी समय कोई बाहर से दरवाजा खटखटा कर पुकारने लगा। पुकार सुन कर चुप रह जाना अच्छा नहीं लगा था; इसलिए फैली रकमों पर रूमाल डाल कर उसने झट-पट छिपा दिया, और फिर किवाड़ खोल दिए।

देखा तो; गौरीनाथ सामने खड़ा था। कौडीमल और गौरीनाथ दोनों गहरे दोस्त थे। गाढ़ी मित्रता होने के कारण ही वह सीधे हिसाब वाले कमरे में आ गया।

कुशल प्रश्न की बातें हुई। उसके बाद गौरीनाथ ने कहा-"भाई। मैं अभी एक बड़ी विपत्ति में फँस गया हूँ। किसी न किसी तरह पचीस रुपए का प्रबन्ध कर दो।" कौड़ीमल चिन्ता में पड़ गया। अपनी व्यापारिक स्थिति, रुपए-पैसे की कठिनाई आदि बातें बड़ी देर तक खूब खोल-खोल कर कहता रहा; जिस से गोरीनाथ समझ जाय और उसे तङ्ग न करे।

"ये सब बातें मत कहो; चाहे जितने सूद पर हो, और चाहे जहाँ से मिले; पच्चीस रुपया लाकर देना ही होगा।" कहता हुआ गौरीनाथ गिड़गिड़ाने लगा। कौड़ीमल के लिए राजी होने के सिवा कोई और दूसरा चारा न रह गया। इधर दोनों में इस तरह

भगवानदास

की बातें हो रही थी; उधर इठान् बत्ती बुझ गई और घर में घोर अन्धकार छा गया। कौड़ीमल ने घबरा कर गौरीनाथ के दोनों हाथ पकड़ लिए और वह अत्यन्त हमदर्दी के साथ बातें करने लगा-"भाई ! कुछ दूसरा मत सोचना। तुम्हारे जैसे लोग इतनी रात को आ जाये, तो कैसे उनकी बात काटी जाय ? मन में इसकी बड़ी चिन्ता हो रही है ! और जब तुम इतने दिनों के बाद आए हो तो फिर भोजन करके ही जाओ।" कहते हुए गौरीनाथ के दोनों हाथ पकड़े आग्रह करने लगा। "अरे! नहीं-नहीं। ऐसा मत कहो, मुझे जाने दो। फिर कभी आऊँगा।" गौरीनाथ जैसे-जैसे ऐसा कहता जाता था वैसे वैसे कौड़ीमल का आग्रह बढ़ता जाता था।

इतने में भक् से बत्ती जल उठी। यह क्या गड़बड़ी है ? यह देखने घर की मालकिन वहाँ आ गई। उसको देखते ही कौड़ीमल ने गौरीनाथ के हाथ छोड़ दिए, और कहने लगा-"ये हैं भाई गौरीनाथ। हमारे आग्रह पर भी, ये हमारे जैसे आदमी के यहाँ कैसे भोजन करेंगे? बहुत अच्छा, जाने दो।"

गौरीनाथ चला गया। "उसे खिलाने के लिए आप क्यों आग्रह कर रहे थे ?" गुस्से से कौड़ीमल की स्त्री ने पूछा।

इस पर कौड़ीमल कहने लगा-"अरी ! भोली-भाली भाग्यशालिनी। इतनी रात गए कौन उसे भोजन के लिए कहता; बत्ती बुझ जाने के कारण कहीं वह रुपए न उड़ा ले जाय। उसके हाथ पकड़ कर मैंने यह नाटक खेला था।"

पति की इस चतुरता और समझ-बूझ को देख कर कौड़ीमल की स्त्री बहुत खुश हुई।

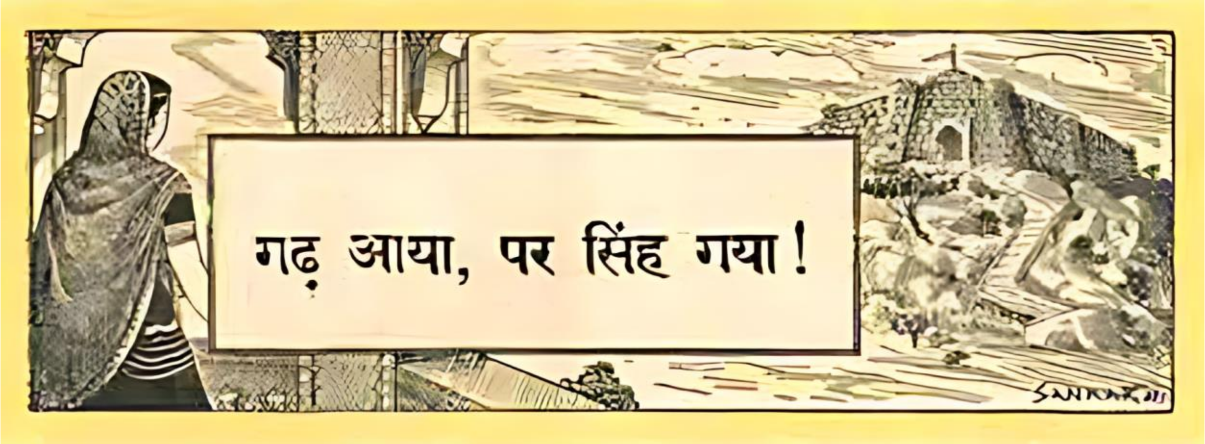

मुगल बादशाह औरङ्गजेब जिस प्रकार इसलाम मजहब का कट्टर भक्त था, उसी प्रकार विधर्मियों से हिन्दू-धर्म की रक्षा करने और समस्त देश को अपने अधीन करके हिन्दू- सम्राज्य स्थापित करने का महान सङ्कल्प किया था महाराष्ट्र के बीराग्रणी शिवाजी ने। अपने सङ्कल्प के अनुसार शिवाजी एक-एक कर के आस-पास के गढ़ को जीतने लग गए। शिवाजी के इस अद्भुत देश प्रेम की जड़ में थीं उनकी माता जीजाबाई।

जीजाबाई प्रतापगढ़ के किले में रहती थीं। उस गढ़ के कुछ ही दूर पर सिंहगढ़ नामक एक दूसरा किला था। एक दिन जीजाबाई किसी ख्याल में मग्न प्रतापगढ़ के ऊपर घूम रही थी कि उनकी दृष्टि अचानक सिंहगढ़ की बुर्जों पर जा पड़ी। वह गढ़ मुगलों के अधीन था। उदपभानु नामक एक राजपूत बीर उसकी रक्षा कर रहा था। जीजाबाई को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने फौरन अपने पुत्र के पास खबर भेजी।

शिवाजी उस समय राजगढ़ के किले में थे। माता का सन्देश पाते ही उठे और घोड़े पर चढ़ कर चल पड़े। प्रतापगढ़ पहुँच कर उन्होंने माता को प्रणाम किया और कहा-"माँ ! क्या आज्ञा है ?"

जीजाबाई ने मुस्कुराकर कहा- "बेटा! यहाँ मेरा मन नहीं लग रहा था। शतरञ्ज खेलने की इच्छा होती है। इसलिए तुम्हें बुला भेजा।" शिवाजी आश्चर्य में पड़ गए। खेल में जीजाबाई जीत गईं; उन्होंने कहा-"मैं जीत गई हूँ, अब मुझे क्या दोगे ?" शिवाजी ने जवाब दिया-"माँ ! तुम जो चाहोगी वही दूँगा।" उन्होंने तुरन्त सिंहगढ़ की ओर उँगली उठा कर

गोपाल गोखले

कहा-"शिवा ! जब तक वह गढ़ तुम्हारे स्वाधीन नहीं होता तब तक मेरी आँखों में नींद नहीं आएगी। इसलिए शीघ्र ही उस पर अपना झण्डा फहराओ।"

शिवाजी स्तब्ध रह गए। उन्होंने कहा-"माँ ! उदयमानु को जीत कर उस किले को वश में लाना आसान काम नहीं है।" जीजाबाई ने कुछ नहीं सुना। वह कहती ही रहीं-"तुम ने तो वचन दिया था-मैं जो चाहूँगी तुम दोगे।"

शिवाजी राजगढ़ लौट आए। किले में रहने वाले सब वीरों को जमा करके उन्होंने माता की आज्ञा कह सुनाई। उन लोगों ने एक स्वर से कहा-"इस काम को केवल एक तानाजी ही पूरा कर सकते हैं।"

उस समय तानाजी वहाँ उपस्थित नहीं थे। बेटे का ब्याह करने कहीं बाहर गए हुए थे। शिवाजी ने तानाजी के पास खबर भेजी। शिवाजी का दूत ठीक उस समय पहुँचा जब कि तानाजी विवाह मण्डप पर बैठे थे। दूत ने वहीं पर महाराज की आज्ञा सुना दी।

कन्या के पिता ने कहा-"गठबन्धन होने के बाद चले जाना।" लेकिन

तानाजी तत्काल उठ खड़े हुए, और-"एक क्षण भी रुकना सम्भव नहीं !" कहते हुए घोड़े पर सवार हो गए और सरपट भागते हुए राजगढ़ जा पहुँचे।

शिवाजी ने तानाजी से माताजी की आज्ञा कह सुनाई। 'सिंहगढ़ जब तक वश में नहीं आ जाता, जीजा माँ को नींद नहीं आएगी। इसलिए हम दोनों में से किसी एक को गढ़ जीतने का सङ्कल्प कर ही लेना चाहिए।"

तानाजी असम्भव नामक कोई शब्द नहीं जानते थे। उन्होंने कहा-"राज-माता की आज्ञा पालन करने और हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना

करने के लिए मैं अपने प्राण भी अर्पण करने को तैयार हूँ।"

....उसी रात को ....

सिंहगढ़ में सब लोग गाढ़ी निद्रा में सोए हुए थे। उदयभानु भी बेखबर पड़ा हुआ था। उस समय सिंहगढ़ के पास तानाजी और उनके सैनिक पहुँचे। गढ़ पर कैसे चढ़ा जाय ? इस पर सब लोग विचार करने लगे। तानाजी के पास एक पालतू गोह थी। वे उसे यशवन्ती नाम से पुकारा करते थे। उसकी कमर में उन्होंने एक रस्सी बाँधी और गढ़ की दीवार पर फेंक कर कहा-"चली जाओ ऊपर।" तानाजी इसी प्रकार गोह को गढ़ पर चढ़ाया करते थे, और वह दनदनाती गढ़ पर चढ़ जाती थी। यह उनका रोज-रोज का काम था। आज भी उन्होंने उसी उद्देश्य से यशवन्ती को सिंहगढ़ पर चढ़ने का आदेश दिया।

तानाजी की यशवन्ती यथा प्रकार ऊपर तो गई, लेकिन वहाँ जम कर बैठी नहीं बल्कि फौरन लौट आई। उसको लौट आई देख कर तानाजी बहुत गुस्सा हुए और उसे खरी-खोटी सुनाने लगे। उनके सरदारों में से एक ने उठ कर कहा -"बिना किसी कारण के यह यशवन्ती लौट नहीं सकती। गढ़ के ऊपर

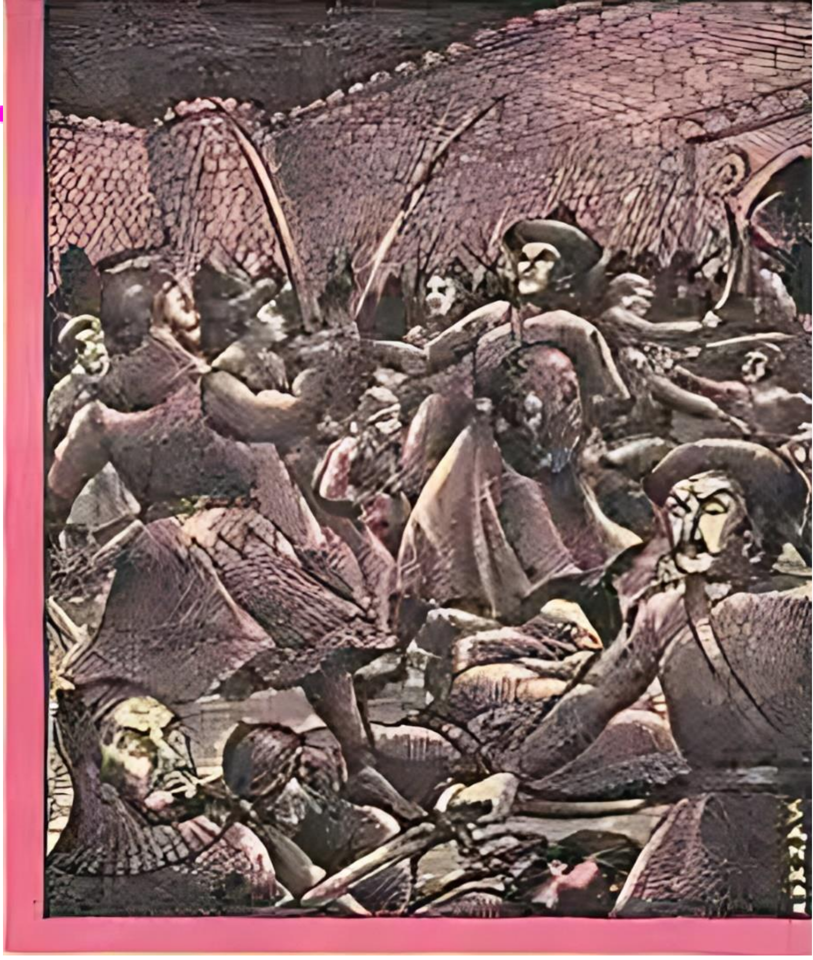

कोई-न-कोई गड़बड़ी इसे दीख पड़ी होगी। उसी की सूचना देने लौट आई है।"

"चाहे जो हो; प्रातःकाल होने के पहले ही सिंहगढ़ पर महाराष्ट्र का झण्डा फहराना है।" कह कर तानाजी ने गोह से कहा-"चली जाओ।" यशवन्ती ने अपने मालिक की इच्छा जान ली और फिर एक बार दनदनाती हुई गढ़ पर चढ़ गई; और जाकर उसने पत्थरों में मजबूती से अपना आसन जमा लिया। वह रस्सी पकड़ कर तानाजी फौरन गढ़ पर चढ़ गए। दूसरे ही क्षण उनके सारे सङ्गी साथी भी ऊपर आ गए।

गोह के लौटने का वाजिब कारण था। गढ़ के अन्दर शराबियों का कोलाहल सुन कर वह अपने मालिक को सूचना देने आई थी। गढ़ की दीवार पर महाराष्ट्र वीरों के पैरों की आहट सुनते ही पहरेदारों ने अन्दर के लोगों को जगा दिया।

जागते ही फौरन उदयभानु राजपूत वीरों और मुगल सिपाहियों को साथ लेकर तानाजी पर टूट पड़ा। दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ। "भवानी देवी की जय ! शिवाजी महाराज की जय।" बोलता हुआ एक-एक मराठा, कई-कई दुश्मनों को मारने लग गया। मुगल सेना की अपेक्षा मराठी सेना की संख्या बहुत कम थी। फिर भी विजय मराठों की हुई। इसका सारा श्रेय उनके नायक तानाजी को ही था।

जो उनके सामने पड़ा--वह ध्वस्त हुआ। इस प्रकार ध्वंस की धूम मचा कर तानाजी ने सूर्योदय के पहले ही सिंहगढ़ को स्वाधीन कर लिया। लेकिन तानाजी का शरीर अंगुल-अंगुल घायल हो गया था। उन्होंने कहा-"अब मेरे प्राण ज्यादा देर तक नहीं रुक सकते; मुझे जल्दी शिवाजी के पास उठा ले चलो।"

"महाराज खुद आ रहे हैं।" ऐसा कण्ठ-स्वर तानाजी के कानों में सुनाई पड़ा। वह कण्ठस्वर तानाजी के वर-पुत्र बाबूजी का था। "बेटा! विवाह मण्डप छोड़ कर तुम क्यों चले आए ?" तानाजी ने पूछा।

"मराठे वीर जब यहाँ प्राणार्पण करने दौड़ आए, तब ताना का बेटा विवाह मण्डप मैं विलास करता रह जाता?" बाबूजी ने कहा। बाबूजी की बात सुन कर तानाजी की छाती फूल गई। "मेरे बाद विश्वास है, तुम इसी भक्ति भाव से महाराज की सेवा करते हुए देश के लिए प्राणार्पण करने को सदा तत्पर रहोगे।" तानाजी ने कहा।

इतने में शिवाजी वहाँ आ पहुँचे। "महाराज, सिंहगढ़ पर मराठों का झण्डा फहरा दिया गया; राज-माता की इच्छा पूरी हो गई...।" कहते हुए वह महान योद्धा शिवाजी की गोद में ही सदा के लिए सो गया।

तानाजी के दिवङ्गत होते ही शिवाजी बच्चे की तरह रो पड़े। फिर जीजा माँ के पास जाकर बोले-"माँ ! गढ़ हासिल हो गया, लेकिन सिंह चला गया।"

जीजा माँ ने सान्त्वना देते हुए कहा- "शिवा! तानाजी ने मिट्टी में मिलने वाली यह देह ही तो छोड़ी है। लेकिन उसकी अमर कीर्ति तो अनन्त काल तक मराठों को मार्ग-दर्शन करती ही रहेगी।"बीर-माता ने फिर तानाजी के 'बीर पुत्र बाबूजी' से कहा-"तानाजी ने जिस महाराष्ट्र के लिए अपने प्राण अर्पित किए हैं, उस देश के ऊपर अपने प्राण देने के लिए हम सब को सदा तैयार रहना चाहिए। तुम धीरज घरो, और चलो अब हम विवाह की विधि पूरी करें।"

शिवाजी ने बाबूजी को विवाह की भेंट में कुछ जगीरें दी और अपने दरबार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली मर्यादा का अधिकार दिया।

करीब दो सौ बरस पहले मलयाल प्रदेश के तालमगोड गाँव में पार्वती अम्मा नामक एक गृहिणी रहती थी।

उसके पति का नाम था रामकुट्टी। वह राज दरबार में नौकरी करता था। एक बार जब वह घर से दरबार में जाता था, तो फिर कब लौटेगा, यह कहना कठिन हो जाता था। इसलिए ऐसे अवसरों पर पार्वती अम्मा को घर में अकेले ही दिन काटने पड़ते थे। पार्वती अम्मा को षड़ानन देव के ऊपर बड़ी भक्ति थी। गाँव के बाहर षड़ानन देव का आलय था। पार्वती अम्मा रोज वहाँ जाती। भक्ति भावना से प्रार्थना करती-"भगवान षड़ानन देव ! क्या आप मुझे दर्शन नहीं देंगे? मेरे नैवेद्य को स्वीकार नहीं करेंगे ?"

पार्वती अम्मा की रोज की इस प्रार्थना को देख कर पुजारी मन-ही-मन उसके भोलेपन पर मुस्कुराया करता था। एक दिन पार्वती अम्मा जब प्रार्थना कर रही थी, तो पुजारी मूर्ति के पीछे छिप कर कहने लगा-"पुजारिन ! मैं तुम्हारी पूजा से प्रसन्न हूँ; आज सायंकाल तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

यह भगवान की अमृतमयी वाणी है। ऐसा विश्वास करके पार्वती अम्मा हर्ष से फूल उठी। जल्दी-जल्दी वह घर आई। श्रद्धा पूर्वक घर को झाड़-बुहार कर साफ सुधरा किया और बड़े प्रेम से पञ्च पकवान बनाए। इतने में सायंकाल हुआ, और एक भिखारी "षड़ानन की जय" कहते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसको देखते ही पार्वती अम्मा ने सोचा कि-"भगवान इसी रूप में मुझे दर्शन देने आए हैं।" ऐसा सोच कर उसने बड़े विनयभाव से कहा-"आइए भगवन, आइए ! इस दीन-दीन का आतिथ्य स्वीकार कीजिए।"

बासुदेव मेनन

यह बेचारा भिखारी आश्चर्य में पड़ गया। उसने बार-बार कहा-"मैं भिखारी हूँ" लेकिन कितना कहने पर भी पार्वती अम्मा ने उसकी बात न सुनी और अपने आग्रह से उसे लाचार बना दिया।

पार्वती अम्मा ने उस भिखारी को पीढ़े पर बिठा कर खूब खिलाया पिलाया। भिखमङ्गे ने अपने भाग्य को सराहा और खूब छक कर भोग लगाया। लेकिन उसके मन में एक चोर

भी घुसा हुआ था-"इस रूप में अगर कोई मुझे देख ले तो ?" इस प्रकार खुशी और खेद के बीचे उसने खूब पेट पूजा की।

जब तक वह भिक्षु खाता रहा, पार्वती अम्मा भक्ति-भाव से मधुर गान गाती रही। शाम होते देख उसने घर में दीप जला दिया।

उसी समय सुन पड़ा-"ओ मेरी आराधिका, किवाड़ खोल।" देखा तो विभूति रेखाओं से रञ्जित देवालय का पुजारी सामने खड़ा है। उसे देखते हो पार्वती अम्मा ने अपने मन में सोचा-"असल भगवान तो यही हैं; यह भोजन करने वाला तो सचमुच कोई भिखमङ्गा ही है।" ऐसा सोच कर उसने भिखमङ्गे को अन्धेरे मचान पर छिपा दिया।

फिर पार्वती अम्मा बाहर आई, और बड़े भक्ति-भाव से पुजारी को घर के अन्दर ले गई और उसका अनेक तरह से स्वागत सत्कार किया।

उसी समय बाहर से घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। खिड़की से झाँक कर देखा, तो घोड़े पर उसका पतिदेव सवार था। फौरन उसने पुजारी भगवान को नमस्कार करके कहा-"भगवान, मेरे पति देव को भगवान पर विश्वास नहीं; वे बहुत क्रोधी भी हैं। उनकी शान्ति के लिए कुछ देर उस मचान पर छिप जाइए।" निकल भागने का कहीं रास्ता न देख कर पुजारी भी मचान पर चढ़ गया, और

एक कोने में लेट रहा। भिखारी का पेट मर गया था, इसलिए उसे तुरन्त नींद आ गई थी। पुजारी का आना उसे मालूम न हुआ। कुछ देर के बाद पुजारी को भी नींद आ गई। पार्वती अम्मा और उसका पति भोजन करने बैठे; तो खाना देख कर उसके पति ने पूछा-"आज क्या था जो इतनी तैयारी की थी ?"

इसके जवाब में पावती अम्मा ने कहा-"मैंने कल स्वप्न देखा था कि तुम आज आओगे, इसी लिए मैंने यह सब बनाया।" पति देव ने खुशी-खुशी खाया और थोड़ी देर बातचीत करके फिर वह सोने चला गया।

आधी रात हुई-

खूब पेट भरके पञ्च-पकवान खाने वाले भिखारी को जोर की प्यास लगी। "पानी पानी" करके वह जोर जोर से चिल्ला उठा। यह सुनते ही पार्वती के पति की नींद खुल गई। उसने पत्नी से पूछा-"यह क्या है ?"

यह सुन कर पार्वती अम्मा ने कहा-"हम लोग अपने पितरों की तृप्ति के लिए तो कोई कर्म नहीं कर रहे हैं। इसलिए वे दो रोज से यों प्रत्यक्ष हो रहे हैं।" यह सुन कर रामकुट्टी हाथ

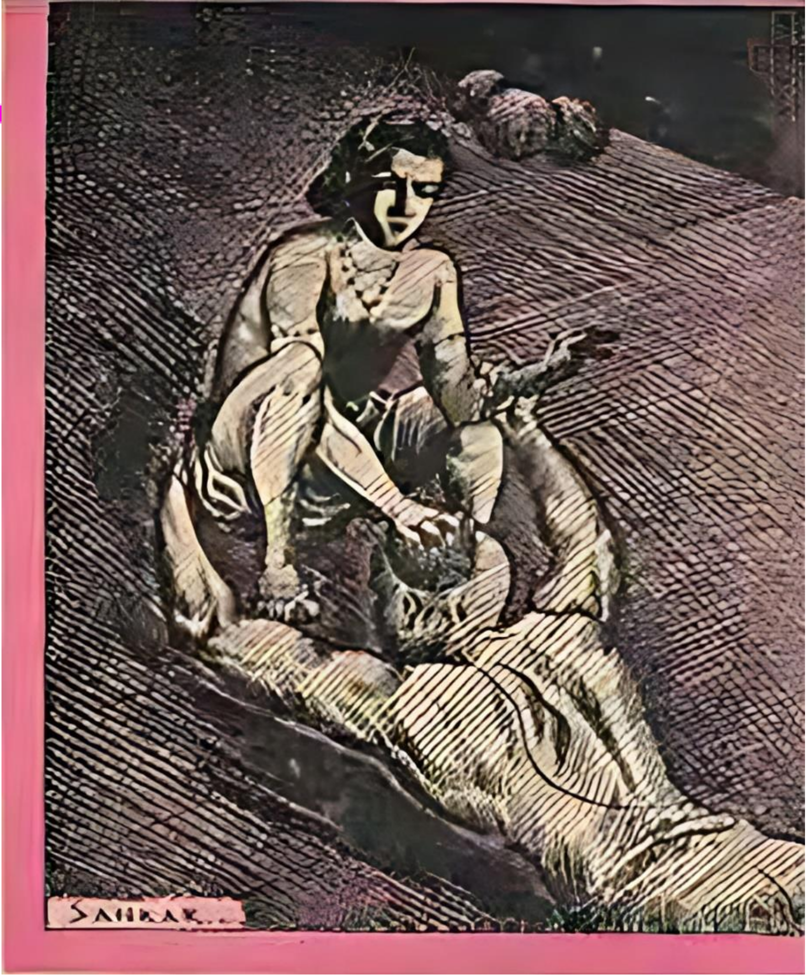

जोड़ कर ऊपर की ओर देखते हुए प्रार्थना करने लगा-"पितृगण ! अब से मैं कर्म काण्डानुसार तर्पण अवश्य करूँगा। अब की बार हमें क्षमा कर दीजिए।"

उधर भिखमङ्गे का कण्ठ सूख रहा था। इसलिए वह फिर चिल्ला उठा-"पानी ! पानी !"

यह देख कर पार्वती अम्मा मचान की ओर मुड़ी और बड़े विनती के स्वर में बोली-"पितर-देव, पूरब की ओर नारियल है; लोढ़ा भी वहीं पड़ा है; फोड़ कर डाब पी लीजिए। यह सुनते ही निखमङ्गे ने उसका मतलब समझ लिया और मचान

पर टटोलते हुए पूरब की ओर बढ़ा। पार्वती अम्मा ने जैसा कहा था वैसा ही एक नारियल उसके हाथ में आ गया। लोढ़ा खोजते हुए अन्धेरे में पुजारी के सिर पर उसका हाथ पड़ा। उसी को लोढ़ा समझ कर उसने उसके ऊपर नारियल दे मारा। सिर पर नारियल पड़ते ही पुजारी-"ओहो हो....! करके जोर से चिल्ला उठा। इतने में छटपटाते हुए पुजारी के हाथ में भिखारी का हाथ आ लगा। दोनों उलझे हुए नीचे गिर पड़े। नीचे यह सब हो-हल्ला सुन कर रामकुट्टी बहुत डर गया। पार्वती अम्मा हड़बड़ा कर उठी और चिल्लाने लगी-"पितृ-गण को आज बहुत क्रोध आ गया है। इतने रोज से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में इन्हें शान्त रखे आ रही थी। अब तुम आ गए हो; यह जानकर वे उपद्रव मचाने लग गए हैं।"

रामकुट्टी ने उन्हें मचान से धम से गिरते हुए देखा ही था। देखते ही घबरा उठा और घोड़े पर चढ़ कर ऍड लगाने लग गया। घबराहट में उसने घोड़े की पिछाड़ी भी नहीं खोली और चाबुक चलाने लग गया। जानदार घोड़े ने जोर लगा कर खूँटे को उखाड़ लिया और सरपट भाग खड़ा हुआ। घोड़ा जितना ही तेज भागा, खूँटा उतना ही तड़ातड़ उसके शरीर पर पड़ने लगा।

यह देख कर उसने सोचा कि वे पितृ-गण ही उसका पीछा कर रहे हैं-"पितृ देवता, मेरा पिण्ड छोड दो। मैं तुम्हें पिण्डदान दूँगा।" यों वह व्याकुल होकर के प्रार्थना करने लगा।

इधर भिखारी और पुजारी अपना-अपना सिर टटोलते अन्धेरे में अपनी राह चले गए। बेचारी पार्वती अम्मा क्या करती ? भगवान की लीला पर वह आश्चर्य करने लगी।

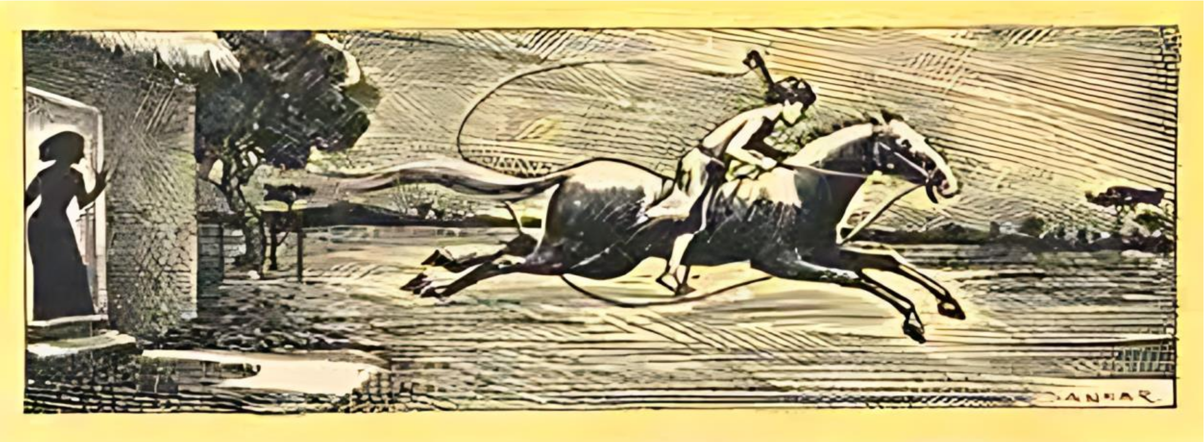

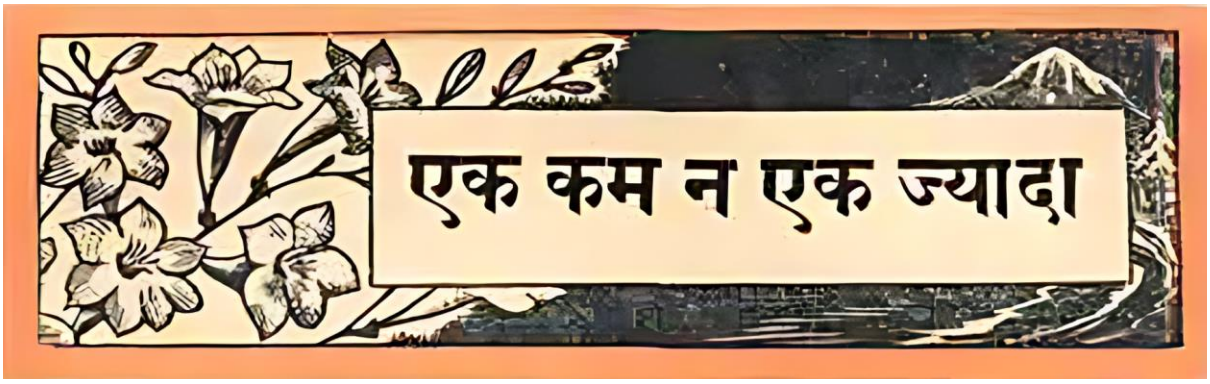

एक कम न एक ज्यादा

बहुत दिन पहले खुरासाँ शहर में मुल्ला नसीर नामक एक व्यक्ति रहता था। मुल्ला नसीर बड़ा चतुर चालाक आदमी था। उसके पड़ोस में एक बड़ा कञ्जूस बनिया रहता था। एक दिन मुल्ला नसीर अपने घर के आँगन में बैठा, माला जपते हुए खुदा के सामने यह दुआ माँग रहा था-"ऐ खुदा! अपनी रहमत (कृपा) से नौ हजार नौ सौ निन्नानवे रुपए- एक कम, न एक ज्यादा- आज और अभी मेज दे; नहीं तो वापस कर दूँगा।"

उसका पड़ोसी सेठ यह सब सुन रहा था और सोच रहा था-"यह मुल्ला का नौ हजार नौ सौ निन्नानवे का चक्कर क्या है ? देखना चाहिए।" ऐसा सोच कर उसने दस इजार की एक थैली उसके घर में फेंक दी।

मुल्ला नसीर ने बह थैली उठा ली और भगवान को अनेक तरह से धन्यवाद देते हुए खोला, देखा तो पूरे दस हजार रुपये थे। तब मुल्ला नसीर ने यों भगवान की सराहना की-"मैने तो भगवान केवल नौ हजार नौ सौ निनानवे रुपए ही माँगे थे, लेकिन तूने पूरे दस हजार भेज दिए। खैर ! तेरी लीला न्यारी है।" सेठजी ने यह देखा तो बहुत घबराए- "अरे! ये मुल्ला तो पका ढोङ्गी है। मेरे दस हज़ार हजम कर जाएगा।" इस प्रकार सोचते हुए वह नसीर के घर पहुँचे।

मुल्ला नसीर ने सेटजी से बड़े तपाक से पूछा-"कैसे आना हुआ सेठजी ?" सेठजी गरजते हुए बोले-"बड़ा मुल्ला बना फिरता है, ढोङ्गी कहीं का ! कहता था 'न एक कम न एक ज्यादा- नहीं तो वापस कर दूँगा।' ला मेरी दस हजार रुपए की थैली। मैंने तेरी नीयत आजमाने के लिए फेंक दी थी।" मुल्ला नसीर ने बिगड़ कर कहा -"चल, पूरे दस हजार रुपए। बड़ा आया धन्नासेठ वहाँ से दस हजार की

ब्रज किशोर

थैली लेने। मैंने भगवान से प्रार्थना की और उसने मुझे दस हजार रुपए दिए। इसमें तेरा क्या इजारा है?" इस पर सेठजी ने कहा-"मुल्ला साहब! ऐसी बातों से काम नहीं चलेगा। इसका फैसला अदालत में होगा; चलो काजी के पास।" तब मुल्ला नसीर ने कहा-"इस समय मैं अदालत नहीं जा सकता। मेरे कपड़े धोबी के यहाँ है।" इस पर सेठजी बोले-"कपड़ों का प्रबन्ध में किए देता हूँ।"

सेठजी अपनी कीमती मखमल की शेरवानी, जरी का जूता, कामदार टोपी ले आए। फिर दोनों काजी की अदालत में जा डटे। सेठजी ने अपनी कहानी काजी को कह सुनाई। इस पर काजी ने मुल्ला नसीर से पूछा-"मुल्ला साहब! यह बात सच है क्या ?" इसका जवाब मुल्ला नसीर ने यों दिया-"हुजूर, क्या आप विश्वास कर सकते हैं कि कोई आदमी इस तरह दस हजार रुपए की थैली किसी के घर में फेंक देगा? बात यह है कि कारवार में नुकसान होने के कारण सेठजी का दिमाग फिर गया है।इसलिए पागलपन की बातें करने लगे हैं।"

तब काजी ने कहा-"इसका आपके पास क्या सबूत है?" मुल्ला नसीर ने झट से जवाब दिया-"हुजूर, अभी ये रुपए के लिए कह रहे थे। अभी ये इस शेरवानी, जूता और इस टोपी के लिए भी कहने लगेंगे।" सेठजी ने गुस्से से आग बबूला होकर कहा-"तो क्या सब चीजें मेरी नहीं हैं ?"

तब मुल्ला नसीर ने कहा-"देख लिया, हुजूर ! इन पर इसी तरह का दौरा चलता है।"

काजी ने सब कुछ देख-सुन कर फैसला सुनाया-"सेटजी ने मुल्ला नसीर पर जो चोरी का इजलाम लगाया है वह गलत है। इसलिए मैं उनको बाइज्जत बरी करता हूँ और सेठजी को पागल खाने भेजे जाने का तजवीज करता हूँ।" यह फैसला सुना कर काजी ने अदालत बर्खास्त कर दी।

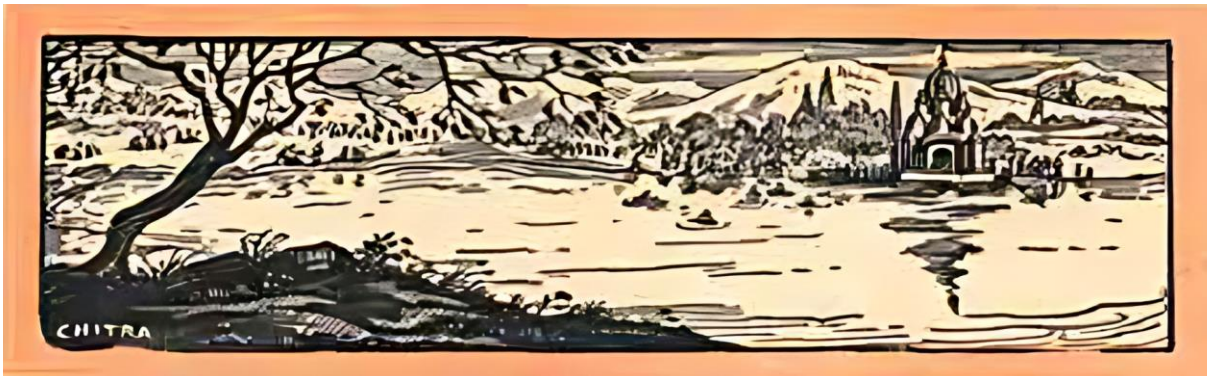

पुराने जमाने में मारवाड़ देश में पुङ्गल नगर के राजा का नाम पिङ्गल था। उस देश में एक दूसरा नगर था। उसके राजा का नाम था सावन्तसिंह।

सावन्तसिंह की एक सुन्दर पुत्री थी जिसका नाम था उमा देवी। पिङ्गल की शक्ति सामर्थ्य की बातें कर सावन्तसिंह ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करने का निश्चय किया और पिङ्गल के पास सन्देश भेज दिया।

लेकिन उसके पहले ही उमा देवी की शादी की बात-चीत गुजरात देश के पाटन राजा के साथ हो चुकी थी। लेकिन रानी अपनी बेटी को गुजरात देश में भेजना पसन्द नहीं करती थी।

इसलिए रानी ने दृढ़ निश्चय के साथ राजा से कह दिया-"चाहे जो हो, वह अपनी बेटी का विवाह गुजरात के पाटन राजा के साथ नहीं करेगी।" लेकिन अब यह सब कहने से फायदा क्या था ? उसका वरदान तो हो चुका था। अब उससे मुकर जाना आसान काम तो था नहीं। लेकिन वह बहुत चतुर थी; इसलिए उसने उपाय सोच लिया। उसने ऐसे समय में शादी का मुहूर्त तय किया, जब कि पाटन राज उधर जाने का अवसर न पा सके।

उमादेवी की शादी हो जाने के कुछ दिनों के बाद उसकी मारुवानी नामक एक लड़की पैदा हुई। उसे प्यार से लोग मारू कहने लग गए। जब वह व्याह के लायक हुई तो उस देश में भारी अकाल पड़ा। अकाल से डर कर पिङ्गल अपना स्त्री और बाल बच्चों को साथ लेकर, प्रजा और देश को छोड़ कर पुष्कर तीर्थ चला गया।

उस समय यहाँ नलबीर गढ़ का राजा नटराज तीर्थ यात्रा करने आया हुआ था। उसके साथ उसकी रानी और तीन बरस का एक राजकुमार भी था। उस राजकुमार के दुलार का नाम था ढोला।

वहाँ नल और पिङ्गल में मित्रता हो गई। वह मित्रता ऐसी गाढ़ी हो गई कि पिङ्गल ने मारू की शादी तीन बरस के ढोला के साथ कर दी। उसके बाद नल अपनी स्त्री और राजकुमार के साथ अपने देश को चला गया। चला गया सो तो हुआ ही। लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई, कि कुछ दिनों के बाद कहाँ किसी राजा के साथ उसका स्नेह या कोई सम्बन्ध हुआ था; यह बात भी वह भूल गया।

ढोला बड़ा हुआ। उसकी शादी हो गई थी यह बात उसको मालूम ही न हो सकी थी। इसलिए उसने मालव देश की राजकुमारी मालवनी के साथ शादी कर ली।

ढोला को घुड़ सवारी से बहुत प्रेम था। देश-विदेशों के सौदागर अच्छे-अच्छे घोड़े लेकर ढोला के पास आया करते थे। उसी सिलसिले में एक बार मालब देश से एक घोड़ों का सौदागर आया और कई उत्तम घोड़े ढोला के यहाँ बेच गया।

वह सौदागर फिर कुछ दिनों के बाद पुङ्गल राजधानी में गया और पिङ्गल से ढोला के साथ राजकुमारी मालवनी की शादी की बात बताई। यह बात तुरन्त राजकुमारी मारू को मालुम हो गई। बचपन ही में उसने सुन समझ लिया था कि उसकी शादी ढोला के साथ हो गई है। वह जैसे-जैसे बड़ी होती गई, वैसे वैसे हुआ ढोला पर उसका प्रेम और विश्वास गाढ़तर होता गया था। लेकिन आज उसी ढोला की शादी किसी और एक

राजकुमारी के साथ हो गई ? यह सुन कर वह दुःख सागर में डूब गई।

उधर नलराज के राज्य में क्या-क्या हो रहा था, वह भी सुन लिया जाय। ढोला की माता के मुँह से एक दिन बातों-बात यह निकल गया, कि बचपन ही में उसकी शादी मारू से हो गई थी। यह बात सुनते ही मालवनी को अपनी सौत पर क्रोध आ गया।

पुङ्गल राज्य से मारू ने ढोला के पास कई सन्देश भेजे। लेकिन मालवनी ने ऐसा षड़यन्त्र रच दिया कि वे सन्देश राजा तक पहुँच ही नहीं पाए।

पिङ्गल को यह देख कर बड़ी चिन्ता हुई कि दूत वहाँ से लौटे क्यों नहीं ? लेकिन मारू हतोत्साह नहीं हुई। उसने भाटों के द्वारा राजा को सन्देश भेजा। वे भाट नलराज के गढ़ पहुँचे, और ढोला से मिल कर बातचीत की।

किसी-न-किसी तरह सच्ची बात तो प्रगट हो गई। यह सब सुनते ही ढोला तुरत आतुरता के साथ पुङ्गल राजधानी जाने को तैयार हो गया। मालवनी ने पति से गिड़ गिड़ा कर कहा "तुम वहाँ मत जाओ।"

लेकिन ढोला ने कुछ नहीं सुना। उसने और भी कई लोगों से प्रार्थना की, लेकिन कोई फल न हुआ।

आखिर वह फिर पति के पास आई, और अत्यन्त दीन होकर कहने लगी-"अच्छा, तो तुम मुझे वचन दो कि जब तक में जागी रहूँ-तुम नहीं जाओगे।" ढोला ने उसकी यह बात मञ्जूर कर ली।

"पति उसको छोड़ कर चला जाएगा।" इस भय से मालवनी ने सोना ही छोड़ दिया। लेकिन कोई कितने दिनों तक सोए बगैर जगा रह सकता है? एक दिन बगैर उसके जाने निद्रा देवी ने आकर उसे अपनी

गोद में उठा लिया। यह देखते ही ढोला वहाँ से निकल पड़ा। उधर थोड़ी देर में मालवनी की नींद खुल गई। ढोला चला गया; यह देख कर उसके दुःख का बारापार न रहा।

उसके बाद उसने एक हीरामन तोते के द्वारा पति को लौट आने की खबर भेजी। हीरामन ने जाकर राजा को खबर दी। राजा को गुस्सा आ गया। उसने कठोरता के साथ कह दिया "जाओ! मालवनी से कह दो कि वह लकड़ियाँ जमा करके उसमें जल जाय।"

ढोला पिङ्गल नगर पहुँचा तो वहाँ देखता क्या है कि कमर पर कलसी रख कर मारू पानी भरने जा रही थी।

बातचीत के सिलसिले में दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। दोनों साथ साथ घर पहुँचे। ढोला को देखते ही मारू के माँ-बाप खुशी में डूब गए। मारू माँ के पास जाकर बोली-"माँ ! जिसके लिए तुम इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थीं, वह मेरा देवता आज प्रत्यक्ष हो गया। घर हँसने लग गया, खम्भे नाचने लग गए और पलङ्ग आनन्द से घूमने लग गए।"

कुछ दिन इसी तरह हँसी-खुशी में गुजर गए। उसके बाद मारू को साथ लेकर ढोला अपने देश को लौट आया।

ढोला अत्यन्त चतुर चालाक आदमी था। वह समयानुसार काम करना जानता था। घर पहुँच कर उसने माँ-बाप को खुश किया। अपनी पत्नी को समझा-बुझा कर शान्त किया और सब को अपने आचरण से सन्तुष्ट रखने लगा। तब से ढोला मारू और मालवनी के बीच लाड़-प्यार की जिन्दगी बिताने लगा। मारू और मालवनी भी बड़े प्रेम से रहने लग गई।

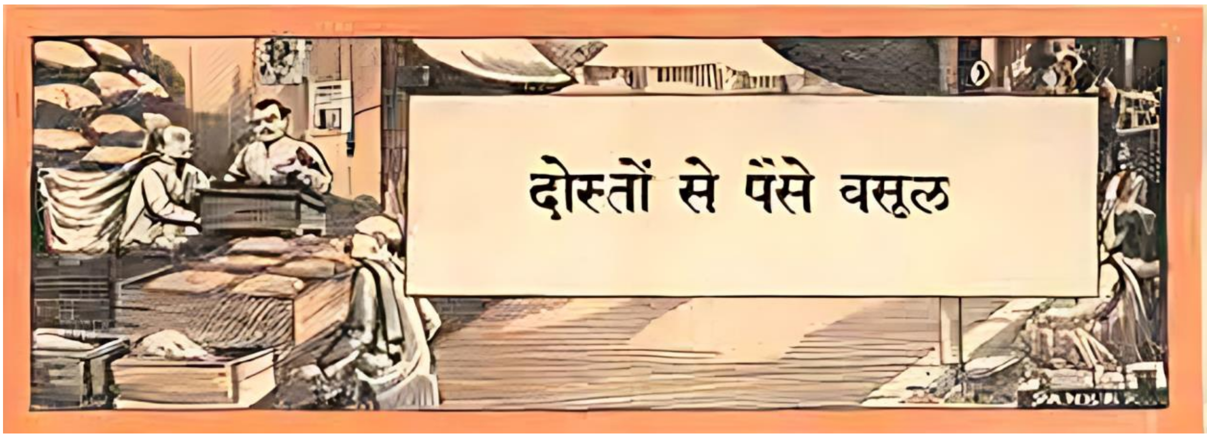

गुरुनाथपुर में गोबिन्दराज नाम का एक गृहस्थ था। उस के दो दोस्त थे। शोभन और बोधन।

गोविन्दराज धनवान आदमी था, यह जान कर शोभन और बोधन उसके दोस्त हो गए। "तुम रुपए पेटी में बन्द कर रखते हो। इस से क्या फायदा ? अगर उन्हें किसी कारोवार में लगा दो, तो एक के दस मिलते रहेंगे।" दोनो ने गोविन्दराज को ऐसी सलाह दी। "मुझे तो कोई कारवार मालम नहीं।" गोविन्दराज ने कहा । "तुम कारवार शुरू कर दो। काम सब हम देख लेंगे।" उन दोनों ने कहा।

गोविन्दराज के पैसे से कारोबार शुरू हुआ। दोनों दोस्तों पर विश्वास करके गोविन्दराज ने सब कुछ उन्हीं पर छोड़ दिया। उन दोनों ने व्यापार में जो लाभ हुआ, वह और असल पूँजी सब कुछ हड़प लिया; और गोविन्दराज को यह कह दिया कि कारोबार में नुकसान हो गया। यों कह कर उसका दिवाला निकलवा दिया।

गोविन्दराज को आखिर तक यह विश्वास नहीं हो सका कि दोनों ने मिल कर उसको ठग लिया। दोनों ने अपने-अपने नाम से बैंक में पाँच-पाँच हजार रुपए जमा कर लिए। उन दोनों ने उसके साथ विश्वासघात किया है-यह बात जान कर भी उसने उन दोनों से कुछ नहीं कहा और पहले की तरह ही उन पर प्रेम-भाव दिखाता आया।

कुछ समय के बाद वह बीमार पड़ा। बचने की कोई उम्मीद न देख कर उसने शोभन को बुलवा भेजा। उसके आते ही गोविन्दराज ने कहा -"भाई शोभन! तुम

मेरा एक उपकार कर दोगे ?"

"क्या करने को कहते हो ?" शोभन ने पूछा।

"मैं तो अब चन्द दिनों का मेहमान हूँ। जाने के पहले मेरे पैसे कहाँ कहाँ है यह बात में अपनी स्त्री को बता देना चाहता हूँ। लेकिन मेरी पत्नी एकदम भोली-भाली है। पैसा हाथ में आते ही दो मिनट में खर्च कर देती है।"

"इसके पास और भी धन है।" यह सोच कर शोभन के मुँह में पानी आ गया और उसने कहा-"सचमुच औरतों के हाथ में धन और मर्दों के हाथ में बच्चा नहीं बढ़ता।" यह कहावत यों ही नहीं चल पड़ी है।

"व्यापार में जो गया सो तो गया ही। अब भी मेरे पास सोलह हजार बाकी हैं। मैंने उनको एक एक घड़े में एक-एक हजार रख कर, घर के चार कमरों के चारों कोनों में, एक-एक घड़ा गाड़ रखा है। सोलह घड़े हैं। यह बात मेरी स्त्री को बिलकुल न मालूम हो जाय। इसलिए अब तुम्हें क्या करना है, सो सुनो...।" इतना कह कर गोविन्दराज जरा रुक गया। "बोलो ! बोलो!" शोभन ने आतुरता से कहा।

"बीच-बीच में मेरे घर की हालत देखते रहना। जब मेरी स्त्री रुपए की तकलीफ में पड़े, तो एक-एक घड़े की बात कह कर उसे खोद कर दे देना।" गोविन्दराज ने कहा।

"इन घड़ों की बात किसी को भी नहीं मालूम होनी चाहिए। बोधन को भी नहीं कहना। उस पर से मेरा विश्वास हट गया है। इसलिए तुम से यह उपकार की भीख माँगता हूँ।" गोविन्दराज ने कहा।

"वैसा ही करूँगा। मेरे ऊपर विश्वास करके निश्चिन्त हो जाओ।" यह कह कर शोभन चला गया।

उसी शाम को गोविन्दराज ने अपने दूसरे दोस्त बोधन को भी बुला भेजा। उसके आने पर जो कुछ शोभन से कहा था, वह सब उस से भी कह सुनाया। यह कहना भी वह नहीं भूला, कि यह उसका बड़ा उपकार होगा, और यह भेद शोभन को भी न मालूम होने पाय।

"मैं उसे क्यों मालूम होने देने लगा? अब तुम निश्चिन्त हो जाओ; सब-कुछ में देख लूँगा।" बोधन ने बड़े विश्वासपूर्वक गोविन्दराज से कहा।

कुछ दिनों के बाद गोविन्दराज की स्त्री ने शोभन के पास जाकर कहा-"मुझे आज-कल रुपए पैसे के बगैर बड़ी तकलीफ हो रही है; पच्चीस रुपए की जरूरत है।"

"मेरे पास रुपए कहाँ से आए? तुम भी कब तक उधार लेकर जिन्दगी गुजारोगी ? मकान को बेच दो न। एक हजार तक मिल जाएगा।" शोभन ने कहा।

"यह बात तो मुझे सूझी ही नहीं थी। अगर बेचना दी है तो आज रात को में सोच विचार करके फल सबेरे तुम से कहूँगी।" उसी शाम को बोधन भी वहाँ आया। उससे भी गोबिन्दराज की स्त्री ने कहा-"मैं घर बेचना

चाहती हूँ। शोभन ने कहा है कि एक हजार तक मिल जाएगा।"

यह सुन कर बोधन बोला-"हजार ही क्या ? अगर तुम बेचना चाहो तो मैं डेढ़ हजार दूँगा।"

दूसरे दिन बड़े तड़के शोभन वहाँ आया। उसको देख कर गोविन्दराज की स्त्री ने बोधन की बात उस से कही।

"मैं दो हजार दूँगा।" शोभन ने कहा। सोलह हजार जिस घर में गड़े हों, उसे दो हजार में खरीद लिया जाए, तो क्या हर्ज है ? रोज की तरह शाम को बोधन वहाँ आया और ढाई हजार देने की बात कर गया।

इस प्रकार दोनों में होड़ लगी और रोज-रोज बोली बढ़ने लग गई। आखिर शोभन दस हजार देने को तैयार हो गया। उसने सोचा सोलह हजार में से दस हजार जाएगा, तो छह हजार फिर भी बच जाएगा।

गोविन्दराज की स्त्री नासमझ तो थी नहीं। उसने सोचा-"बोधन कुछ और बढ़ेगा ही।" लेकिन बोधन ने बोली नहीं बढ़ाई। शोभन के घर जाकर वह कहने लगा-"अरे, उस घर के लिए तू ने दस हजार देने की बात की है? क्या अफीम खा ली है?" उसने गरज कर कहा।

"तुमने भी तो अफीम खाकर ही उसका दाम इतना बढ़ा दिया था।" व्यङ्ग से शोभन ने कहा। दोनों एक दूसरे को देख कर गूढ़ भाव से मुस्कुरा पड़े। दोनों के दिलों में यही हो रहा था कि यह भेद उसे कैसे मालूम हो गया। आखिर बोधन बोला-"दस हजार कहाँ से लाओगे? बैंक में तो तुम्हारे पाँच हजार ही जमा है।"

"तुम्हारे भी तो पाँच हजार जमा हैं; वह तुम मुझे उधार दे दो। एक सप्ताह में लौटा दूँगा।" शोभन ने कहा।

"यह सब होने का नहीं; आओ दोनों आदमी मिल कर दस हजार में वह घर खरीद लें। घर दोनों के नाम पर रहेगा।" बोधन ने कहा।

इसके पहले गोविन्दराज के दस हजार रुपए जो इन लोगों ने हड़प लिए थे, लाकर उसकी स्त्री की गोद में रख दिए और घर लिखवा लिया। इसके बाद दोनों एक-एक खन्ती हाथ में लेकर घर के एक-एक कोने में जा बैठे और खोदने लगे। खोदते चले गए, पर घड़े का कहीं पता नहीं लगा।

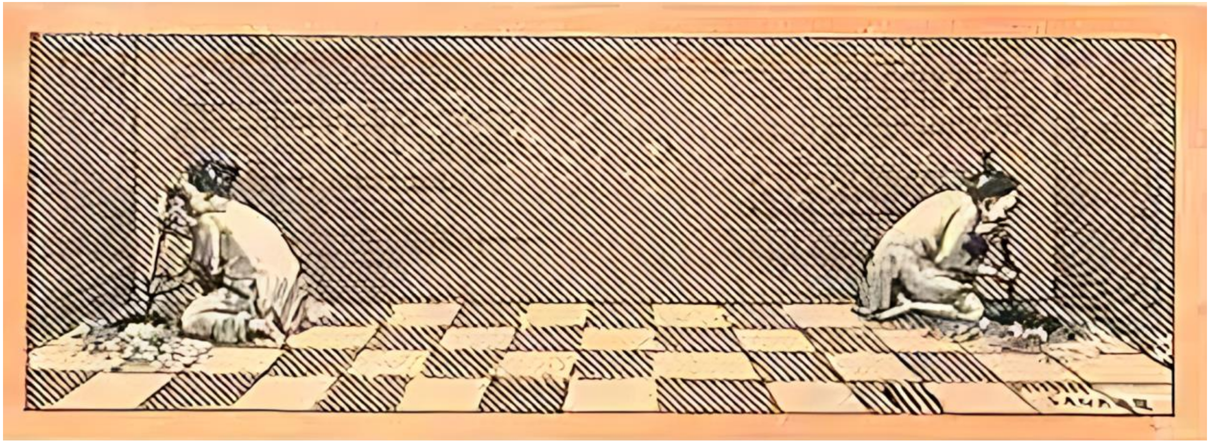

CHANDAMAMA (Hindi) APRIL 1954 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र कथा, चित्र—२